समर्पण

जीवनमुक्त, परमहंस
स्वामी दक्षिणामूर्तिजी
के
चरण-कमलों में

मुरलीधर सिंह 'अंश'

विसंगतियों के साथ

[कविता - संग्रह]

श्रद्धेय श्री डी मोहन मालवीय

को

सादर मुरलीधर

11/8/96

रचयिता

मुरलीधर सिंह 'अंश'

1996

सम्मति

वर्तमान युग कथनी एवं करनी के अपूरणीय अवकाश का युग है। प्रत्येक क्षेत्र में दुरंगेपन, विरोधाभास, टकराव, ऊहापोह और विघटन की धूम है। सच पूछिए तो हर आदमी विसंगतियों में जी रहा है। वह विसंगतियों में साँस लेता, विसंगतियों से जूझता, विसंगतियों में पलता और विसंगतियों के साथ ही चलता है। इन विसंगतियों में कविता की स्थिति क्या है ? प्रस्तुत कविता संग्रह की भूमिका में श्री रमेशचन्द्र द्विवेदी ने कविता के मिजाज की विस्तार से चर्चा की है। यह सही है कि कविता विसंगति नहीं है, लेकिन यह भी सही है कि कविता विसंगतियों से खूराक खींचती और अत्यन्त संगत ढंग से अभिव्यक्त करती है। कवि श्री मुरलीधर सिंह 'अंश' ने अपने 'विसंगतियों के साथ' रचना संग्रह में समाज की विसंगतियों को वाणी दी है। स्वाभाविक है कि विसंगतियों का दबाव भाषा, छन्द एवं गति को भी प्रभावित करे। फिर भी मुझे ये कविताएँ पढ़कर प्रसन्नता हुई क्योंकि इन कविताओं में हमें कवि की अकुलाहट और जागरूकता की स्पष्ट झलक मिली है।

(मोहन अवस्थी)
डी० फिल०, डी० लिट०

8/4, बैंक रोड
इलाहाबाद
24.2.96

नयी कविता : 'अंश' और अंशी के रूप में

नयी कविता-आन्दोलन ने हिन्दी काव्य-क्षेत्र में जो ऊर्जा विकीर्ण की उसकी दीप्ति अभी तक के सजग रचनाकारों में दृष्टिगत होती है। एक वैचारिकता और आत्मदर्शी जीवनानुभव, साथ ही अछूती अभिव्यक्ति की पहचान आज के युग की सार्थकता बनकर प्रकट हो रही है। संगति और विसंगति का सूक्ष्म-बोध तथा विविध कलाओं में उसका सार्थक निरूपण निरन्तर अपनी समझ को धारदार बनाता जा रहा है। विद्रूप और अपरूप नयी दृष्टि और नयी चेतना के उन्मेष का संवहन भी करते हैं केवल भय, आतंक, आत्मघात तथा पराजय-बोध ही नहीं कराते। कवि-कलाकार के रूप में मैं साक्षी हूँ कि जिजीविषा आज के रचना-कर्म को केन्द्रीय रूप में परिभाषित करती है।

बाह्य-साधन कसौटी के अवसर धोखा दे जाते हैं फलतः आत्मबल और अन्तर्दृष्टि मार्ग खोजने को विवश है। स्वयं भाषा उसे छोटी पड़ती दिखायी देती है तो संकेतों, प्रतीकों, बिम्बों तथा अतार्किक शब्द-संयोजकों का सहारा लेता है पर आज का संकट उससे भी बड़ा है अतः नयेपन का आग्रह सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशद से विशद आयाम ग्रहण करने लगा है। कवि की संवेदना पर वैज्ञानिकता ने प्रश्न-चिह्न अंकित कर दिया है। संश्लेषण-विश्लेषण से आहत हो रहा है। अतः कविता शब्द का सामना उसे प्रश्न मानकर करती है और उत्तर पाने की छटपटाहट उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र-बिन्दु बन गयी है। उलझनों के बीच सही रास्ता उसे सुझायी नहीं देता। अंधेरा और घनीभूत हो जाता है। कभी सर्वेश्वर याद आते हैं, कभी मुक्तिबोध। संसद से सड़क तक जाकर भी निहाई चोट करती रहती है। भवानी भाई की यह पंक्तियाँ मुझे कभी नहीं भूलतीं :

> तुम डरो नहीं
> डर लेकिन कहाँ नहीं है,
> कुछ खास बात
> डरने की यहाँ नहीं है।
> बस एक बात है
> जो केवल इतनी है।
> कुछ लोग यहाँ थे
> जो अब यहाँ नहीं हैं।
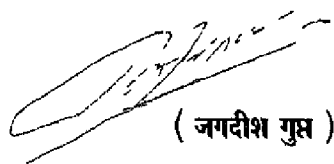
कोई कवि बना रहे, कविता की धारा अपने भीतर सूखने न दे इसके लिए उसे जीवनव्यापी संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि अकाव्यात्मकता तथा संवेदनहीनता पूरे वातावरण में व्याप्त हो गयी है। साहित्य में कविता यों भी हाशिये पर आ गयी है। मैं चाहता हूँ कि वह फिर से केन्द्र में आये। अतः कवि के रूप में अपनी पहचान बनाये रखना, नयेपन की प्रतीति के लिए अपनी मानसिकता को तत्पर रखना और नये की संभावना बनाये रखना आवश्यक हो गया है एवं 'निकष' की नवीनता भी अनिवार्य होती जा रही है। मैंने नयी कविता निकाली तो भारती ने 'निकष' शुरू किया और विपिन ने 'क ख ग'। हमारा कवि-कर्म हमें जगाये रहता था।

कविता की समस्त परिभाषाएँ नये अनुभवों और नयी अभिव्यक्तियों के आगे छोटी पड़ जाती हैं अतः कहना पड़ता है—'अवस्थाभेदेन धर्मभेदः'।

शाश्वत की चिन्ता स्वाभाविक है पर उसकी उपलब्धि का कोई सरल मार्ग नहीं है। सहजता की उपलब्धि सबसे कठिन कार्य हो गया है जबकि कविता मन को सहज बनाये बिना नहीं उपजती।

अंश जी आज भी नयी कविता से जुड़ने में अपने कवि-कर्म की सार्थकता समझते हैं, मैं उनके साहस की सराहना करता हूँ जो प्रकारान्तर से उनकी कविताओं की सराहना भी है।

मेरे प्रिय रमेशचन्द्र द्विवेदी ने अपनी विस्तृत भूमिका में जितनी गहरायी से काव्य के अछूते पक्षों पर विचार किया है वह इस काव्य-संग्रह को स्थापित करने में समर्थ होगा ऐसा मुझे विश्वास है। फिराक़ साहब के सुदीर्घ साहचर्य ने उनके भीतर जो काव्य-दृष्टि विकसित की है वह स्वयं एक उपलब्धि है। मेरी कविता-पंक्ति "कवि वही जो अकथनीय कहे" की व्याख्या वे जिस रूप में करते हैं उससे मैं अपने काव्य-विवेक का परिविस्तार होता देखता हूँ। भविष्य में कविता को जीवित रखने में उनकी जैसी समझ बहुत कम लोगों के पास मैंने देखी। अंश जी उनकी समग्रता में नया रूप लेंगे ऐसा मुझे विश्वास है।

(जगदीश गुप्त)

181-ए/1 नागवासुकि
इलाहाबाद-211006
29.2.96

अपनी बात

श्रृंगार-शतक, वैराग्य-शतक, निति-शतक के रचयिता योगिराज भर्तृहरि की समाधि-स्थली चुनार के संगतराश वंश में मेरा जन्म हुआ। मैं उसी मिट्टी में बड़ा हुआ। वहीं थे उग्रजी के अग्रज पाण्डेय उमाचरण "त्रिदण्डी"।

मेरे पूर्वजों ने जब भी अनगढ़ पाषाणों पर टाँकी को साधकर सधे हाथों हथौड़े से चोट की, पाषाणों से कभी ब्रह्मा, कभी विष्णु, कभी शंकर कभी दुर्गा, कभी काली अवतरित हुईं, जिनके समक्ष राजा, रंक, फकीर सभी नत मस्तक हुये। मेरे स्वर्गवासी पिता श्री श्याम सुन्दर एवं मुझे छोड़ कर, आज भी मेरे वंशज अपने पुश्तैनी काम में लगे हैं। मेरे पूर्वजों ने कई दशक पहले वैद्यनाथ धाम में गोपालजी (श्री कृष्ण की बाल प्रतिमा) एवं श्री बालानन्द ब्रह्मचारी के युगल मन्दिर का निर्माण कराया था जो नवलखा मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। हाल ही में मेरे हमउम्र चाचा श्री हरिमोहन दास (ठाकुर एण्ड सन्स) ने बोध गया में भगवान् बुद्ध की (योगमुद्रा वाली) साठ फुट ऊँची प्रतिमा का निर्माण कराया है। अभी भी उनके द्वारा भगवान् बुद्ध के दस शिष्यों की पाँच मीटर ऊँची प्रतिमाओं का निर्माण कराया जा रहा है।

इसे मैं अपना सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य, मैंने टाँकी और हथौड़े के स्थान पर कलम पकड़ी। पूर्वज पाषाण में प्राणप्रतिष्ठा करते रहे और मैंने शब्दों में प्राण फूँकने का प्रयास किया है। निष्प्राण शब्द भी पत्थर ही हैं। साहित्य प्रेम मुझे पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ। मेरे पिताजी एक साहित्य प्रेमी के साथ-साथ चित्रकार भी थे। पढ़ना-पढ़ाना उनकी रुचि थी उनके पुस्तक संकलन में धार्मिक पुस्तकों की संख्या अधिक थी। इण्टरमीडिएट में पहुँचते पहुँचते मैं तुकबन्दी करने लगा था। वही आज तक कर रहा हूँ। चुनार में उस समय मेरे साहित्यिक हमसफर थे श्री शिव प्रसाद 'कमल' और मु० यूनुस जो मेरे मित्र भी हैं, जिन्हें भूलना चाहकर भी भुलाया नहीं जा सकता।

नौकरी में मेरी प्रथम नियुक्ति गाजीपुर मे हुई। यहीं कविता को पौढ़ता प्रदान हुई। मैं अत्यन्त ऋणी हूँ भाई विश्वनाथ पाण्डेय 'वेखटक मीरजापुरी' का जो उन दिनों मेरे ही विभाग में पहले से कार्यरत थे, जिन्होंने समय के अच्छे-अच्छे साहित्यकारों से मेरा परिचय कराया। उस समय वहाँ थे स्व० सोमेश्वर नाथ श्रीवास्तव 'मुफ़लिस जिनका निवास,

स्थान साहित्यिक अखाड़ा हुआ करता था। जहाँ कविता हो या गजल दोनो साथ-साथ कवायद किया करते थे। वह स्थान आगन्तुक साहित्यकारों के लिये रात्रि विश्राम का स्थान भी हुआ करता था। हर शनिवार को स्थायी रूप से बैठकें वहीं हुआ करती थीं। बैठकों में हुआ करते थे सर्वश्री श्रीकृष्ण राय 'हृदयेश', श्रीनाथ मिश्र, गहलौतजी, विश्वनाथ पाण्डेय 'बेखटक मीरजापुरी', अमर नाथ श्रीवास्तव, डॉ० जीतेन्द्र नाथ पाठक, उमाशंकर तिवारी, नरेन्द्र श्रीवास्तव, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, जनाब कलीम साहब, खलिश साहब, खामोश गाजीपुरी, रिन्द साहब, छुट्टियों में अलीगढ़ से आ जाते थे डॉ० राही मासूम रज़ा। नयी कविता से मेरी जान पहचान वहीं हुई और मैं उसी का होकर रह गया।

मेरा स्थानान्तरण गाजीपुर से मीरजापुर के लिये हुआ। यहाँ पहली मुलाक़ात स्व० बनारसी लाल 'पंकज' से हुई। राजकीय इण्टर कालेज के कवि सम्मेलन में भेंट हुई भाई राजकुमार सेठ और प्रभुनारायण श्रीवास्तव से जिनका स्नेह धीरे-धीरे मित्रता में बदल गया। आते जाते परिचय बढ़ा स्व० प्रताप विद्यालकांर से जिनके सान्निध्य में कविता को ठोस धरातल मिला। प्रतापजी, मित्र, बड़े भाई, अभिभावक, डॉक्टर सब कुछ थे मेरे लिये।

धीरे-धीरे साहित्यिक मित्रों का दायरा बढ़ा। भेंट हुई पं० हरीनाथ शर्मा वैद्य से जो मेरे आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान के गुरु भी हैं, परिचय हुआ, स्व० किशन लाल गुप्त, मन्नी लाल जायसवाल से, श्री मधुकर मिश्र, उनके लघु भ्राता दीना नाथ मिश्र, डॉ० भवदेव पाण्डेय, बृजदेव पाण्डेय, गोपाल कृष्ण सिन्हा 'शेष' आदि से। धीरे-धीरे कुछ और साहित्यिक बन्धुओं के निकट हुआ जिनमें गणेश गम्भीर, अशोक बच्चन, दिनेश चन्द 'नीरस', मधुकर चित्रवंशी के नाम प्रमुख हैं।

मीरजापुर के उर्दू साहित्यकारों का भी स्नेह प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला। जिनमें प्रमुख रहे स्व० हुरमतुल एकराम साहब, ज़फर साहब, ताबिश साहब, असद साहब एवं सिराज साहब। मैं आभारी हूँ भाई दिनेश चन्द 'नीरस' का जो मुझे सदैव प्रेरणा देते रहे कविता संग्रह के प्रकाशन के लिये।

मेरी सर्वप्रथम रचना बिहार से निकलने वाले 'प्रजातंत्र' में प्रकाशित हुई थी। दैनिक 'आज', 'सन्मार्ग' दैनिक एवं साप्ताहिक (कलकत्ता) 'प्रकाश' साप्ताहिक (कलकत्ता) में भी मेरी रचनायें प्रकाशित हुईं। 'प्रकाश' के सम्पादक श्री क्षमा शंकर द्विवेदी का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने अपने साप्ताहिक के विशेषांकों में स्थान देकर मेरा उत्साहवर्धन

किया। गगा गोमती के कोण से (गाजीपुर), मीरजापुर, एव त्रिविधा साहित्यक संकलन में मेरी रचनायें संकलित हुई।

मैं आभारी हूँ अपने सहकर्मी सर्वश्री रामचन्द्र उपाध्याय, श्याम दुलार यादव, चन्द्रबली यादव, बाल मुकुन्द दूबे, रवी सिंह, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, नामवर सिंह, हौसिला प्रसाद तिवारी, दयाशंकर सिंह, महेन्द्र सिंह आदि का जिन्होंने संकलन प्रकाशन हेतु सदैव मेरा उत्साहवर्धन किया।

पुस्तक प्रकाशन में भाई रमेश चन्द्र द्विवेदी का मुख्य हाथ रहा। जिनके जुगाड़ के बिना प्रकाशन सम्भव ही न हो पाता। मैं उनका आभार किस प्रकार व्यक्त करूँ कुछ समझ में नहीं आता। द्विवेदीजी अपने इतने आत्मीय हैं कि शब्दों में आभार व्यक्त करना मात्र औपचारिकता के अतिरिक्त कुछ न होगा। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की इसके लिये भी मैं उनका सदैव आभारी रहूँगा।

मैं इस पुस्तक के मुद्रक डॉ० उर्मिला दीक्षित का भी आभार व्यक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होंने बड़े मनोयोग से मुद्रण कार्य सम्पादित किया तथा प्रूफ भी स्वयं देखने का कष्ट उठाया जिससे मेरा समय एवं श्रम दोनों बचा।

मेरी ये रचनायें किस कोटि में आयेंगी इसका निर्णय करना पाठकों एवं आलोचकों का काम है। हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगा कि यदि रचनाओं से आपको थोड़ी सी गरमी जो सुगबुगाहट उत्पन्न कर सके, थोड़ा-सा प्रकाश, थोड़ी सी नवचेतना मिल सके, या रचनायें चिकोटी काट सकें तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

मुरलीधर सिंह 'अंश'

भूमिका

आधुनिक कविता के विषय में एक बड़ी खूबसूरत बात यह कही गई है कि वह Prose cut into lengths है। यह बड़ी सारगर्भित बात है। कविता हो या आधुनिक कविता उस पर अन्तिम रूप से और निर्णयात्मक ढंग से कुछ कहा नहीं जा सकता। बात बस आँखों आँखों में यानी इशारतन या संकेत रूप से कही जा सकती है लेकिन हमारा काम तभी बनेगा यानी हम कविता से तभी दो चार हो सकते हैं जब हम इशारों को छोड़कर वास्तविकता को पकड़ें। कविता या आधुनिक कविता को लेकर कई प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। क्या कविता में हमारी सामाजिक समस्याओं का समाधान मिल सकता है और रोजमर्रा के जीवन में उठने वाली परेशानियों को हल करने में या उनका सामना करने में वह हमारी सहायता कर सकती है ? क्या कवि जीवन की जटिल समस्याओं से घबराकर भाग निकलने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं ? क्या कविता पलायनवाद नहीं है और कवि भगोड़े नहीं हैं ? ये प्रश्न बड़े सार्थक हैं। अच्छा होगा यदि इन प्रश्नों को समझने और कविता के सन्दर्भ में उनका समाधान ढूँढने की कोशिश की जाय।

जीवन का अर्थ ढूँढने का कार्य चाहे, थोड़ी देर के लिये इसे समाज की अत्यावश्यक जरूरतों की अवहेलना ही क्यों न समझ बैठें– पलायनवाद तो नहीं है। साहित्य या कविता का काम जीवन जीने के महत्व के प्रति हमारी दृष्टि का विस्तार करना है। इस महत्व को आत्मसात किये बिना जीवन के बेहतर हालात भी हमारे लिये एक बोझ बन जायेंगे। सामाजिक सुधार के आगे भी एक लक्ष्य है – सामाजिक हालत की बेहतरी की प्राप्ति को सार्थक बनाना। हमारी मूलभूत समस्यायें केवल सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन, आर्थिक सुधार, जीवन की शांतिपूर्ण सुरक्षा-व्यवस्था तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि जीवन की वास्तविक समस्या स्वयं जीवन ही है जो अन्य सभी सामाजिक समस्याओं से परे है। यदि कुछ लेखक और साहित्यकार साहित्य और कविता को सामाजिक समस्याओं के वर्णन और उनका समाधान ढूँढ निकालने तक ही सीमित रखना चाहते हैं तो ठीक है। उनका यह काम सराहनीय भी है। लेकिन इस प्रकार की रचनाओं को यथार्थवादी कहना और इससे अलग या भिन्न प्रकार की कलाकृतियों को पलायनवादी कहना उचित नहीं होगा क्योंकि अस्थायी और क्षणिक समसामायिक समस्याओं के समाधान के लिये शाश्वत मूल्यो का परित्याग या उनकी अवहेलना करना नितात अनुचित

और असंगत है। कविता उन सामाजिक मूल्यों को नहीं दे पाती, वह काम नहीं कर पाती जो पत्रकारिता और प्रॉपगैन्डा आदि कर पाते हैं। कविता न तो सामाजिक बुराइयों का जवाब है और न ही वह हमें जीवन की भौतिक समस्याओं का सामना करने के लिये तैयार करती है। हाँ, कविता आनुषंगिक या घटनात्मक रूप से अपनी भाषा-शक्ति के प्रभाव से पाठकों को एक अनुभूति प्रदान कर सकती है जो उनके अपने स्वभाव के अनुसार उनकी प्रकृति पर एक असर छोड़ सकती है। कविता के विषय में यह ढिंढोरा पीटना कि कविता समाज को डूबने से बचा सकती है उतना ही अप्रासंगिक है जितना यह विचार कि वर्तमान युग की बुराइयों से बच निकलने का कविता एक रास्ता है। कविता की उपयोगिता एक बड़ी विषम और पेचीदा धारणा है। उस पर ग़ौर करना आवश्यक है। एक बात तो सुनिश्चित है कि कविता उन लोगों के लिये मूल्यवान और उपयोगी है जो कविता के प्रशंसक हैं क्योंकि कविता विषम और जटिल मानसिकताओं और संवेदनाओं में प्रवेश करने और उसे सोचने-समझने की शक्ति प्रदान करती है। काव्य-प्रेमी इस बात से अवगत हो जाता है कि व्यक्ति विशेष द्वारा किसी घटना की अनुभूति ही इस सृष्टि में एक बड़ी अद्‌भुत और निराली बात है। अनुभूति का यह क्षण बड़ा ही अद्‌भुत है। यह विचित्रता, निरालापन या वैशिष्य जीवन की सभी घटनाओं को अनुभव करने की एक विधा है। मनुष्य इस विश्व में अकेला भी है और विषम और पेचीदा भी है और अकेला होना विश्वजनीन है। इसे समझने में कविता हमारी बड़ी सहायता करती है। जो कविता को रोटी समझते हैं कविता उनके लिये अवश्य ही रोटी है और कविता कुछ अर्थों और सन्दर्भों में उनके लिए भी रोटी है जो कविता के विषय में गलतफ़हमी के शिकार हैं।

कविता परिचित को अपरिचित बना देती है। कवि की प्रेरणायें वे क्षण हैं जिनमें वह अपरिचित से परिचित होता है। अपरिचयात्मकता, वस्तुओं की नवीनता का एहसास, किसी घटना से मानव-मस्तिक के सम्पर्क की अद्‌भुतता ही सब कुछ है। जीवन में कुछ ऐसी अनुभूतियाँ होती हैं जो सभी के लिये अपरिचित लगती हैं। यही सब तत्व मिलकर कविता की अपरिमेय विषयवस्तु की रचना करते हैं। अपरिचित का अपरिचत होना या अपरिचित रह जाना कविता का आधार है। मृत्यु, प्रेम, अनन्तता, ब्रह्म, सृष्टि-विस्तार के समक्ष मनुष्य का लघुत्व, अज्ञात धर्म, दर्शन, नैतिकता आदि-आदि मानव-जीवन से सम्बन्धित मूलभूत दशाएँ या तत्व हैं। कविता में इनका अनुभव हमें इनकी काव्यात्मक अनुभूति प्रदान करता है और तर्क और औचित्य पर आधारित दर्शन,

धर्म और नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों के करीब पहुँचा देता है। कविता हमें वहाँ ले जाती है जहाँ मानव, देश और काल में अपनी अनजान और अपरिचित परिस्थितियों के बीच और उनके साथ अकेला है।

कवि एक बहुत ही सशक्त, ऐश्वर्यपूर्ण और विभूतियुक्त शब्द है। यह 'प्रणव' के समान ही सर्वग्राही, व्यापक, सूक्ष्म, रहस्यात्मक, हस्तामलक की भाँति स्पष्ट और गोपनीय गुह्य तत्वों का उद्घाटक और चेतना की गुफाओं में निहित सुषुप्त सौन्दर्य को लोरियाँ गा-गा कर जगाने वाला पुरुषार्थ का केन्द्र है। कविता परम और चरम पुरुषार्थ है। अंधकार-मंथन करके प्रेम और सौन्दर्य का प्रकाश काढ़ना कवि धर्म है। कवि नरक को उसकी ज्वाला, पीड़ा और सभी विसंगतियों समेत पी जाता है और उसे अपने हृदय की धड़कनों में शामिल कर लेता है। कवि शिव से भी महान् है। शिव ने विष या गरल को अपने कण्ठ में धारण कर लिया था, हृदय तक उतारने की हिम्मत नहीं हुई। कवि उस घातक विष को अपने हृदय में उतार लेता है और उसे भी थपकी देकर बालकों की तरह सुला देता है। आखिर गरल को भी तो आराम प्रदान करने वाला कोई होना चाहिये। विष को शीतलता, मुक्ति, अमरत्व और साहचर्य, सान्निध्य प्रदान करने वाले का नाम है कवि। कवि सर्वज्ञ है, सबके दिल की जानता है। जीवन की विसंगत्तियों की भी पीड़ा से अवगत है। इसीलिये जीवन के हलाहल को उसने हृदय में स्थान दिया, दिल के पास रखा, दिल में बिठाया और उसको अमृत में बदल डाला। कवि का हृदय विषशोधक यंत्र है। तभी तो कविता में ढलकर अशुभ शुभ बन जाता है, अपवित्रता पवित्र बन जाती है और भौतिक लोक दिव्य लोक बन जाता है। संसार के सभी ज्ञानों की तान आकर कविता पर ही टूटती है। शायद इसीलिए शेली ने 'Defence of Poetry' में कहा था कि Poetry preserves from decay the visitations of divinity in man — Poetry is the centre and circumference of all knowledge। कविता परा भक्ति है जो ज्ञान को भी पवित्र करती रहती है। कविता आदि सृष्टि है, कविता मूल-प्रकृति है। महाप्रलय में जब चारों ओर अंधकार घिर जाता है, अभेद्य अंधकार रूपों को ढक लेता है तब कविता अपने कारण में लीन हो जाती है-स्वेच्छा से। फिर चिद्-अणु में हलचल होने से कविता आँखें खोलने लगती है। कवि रोज़ नहीं पैदा होते हैं। पृथ्वी सूर्य की जब सदियों परिक्रमा कर चुकती है तब कोई कवि पैदा होता है, तब कोई क्रान्तदर्शी आँखें खोलता है।

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा

समाज ने सदैव ही कवियों की अवहेलना ही की है-क्योंकि वे समाज के लिये उन अर्थों में उपयोगी नहीं होते जिन अर्थों में बैगन। समाज को सबसे अधिक यदि किसी वर्ग ने दिया है तो कवियों के वर्ग ने। मगर बदले में उन्हें तिरस्कार, अपमान, अवहेलना, निष्ठुरता, क़ैद, पत्थर-प्रहार यही देता आया है समाज। कवियों को आज जूते तले रौंदना कल उनको सर पर बिठाना यही होता आया है सदैव से इस समाज में। सोचने की बात है कि निराला का नाम लेकर खड़ीबोली हिन्दी कविता शपथ ग्रहण करती है। लोग, प्रयाग के प्रबुद्ध नागरिक 'निराला' से अपने सम्बन्धों और सम्पर्कों की बात करके गौरवान्वित महसूस करते हैं, कवि और आलोचक 'निराला' की पीड़ाओं, उनके कष्टों और बेघरबार होने का वर्णन बड़े उन्नत-भाल के साथ करते हैं। सोचने और रोने की बात है कि इतने बड़े नगर प्रयाग में एक भी व्यक्ति, एक भी सेठ साहूकार, एक भी दानवीर, एक भी सूरमा, एक भी कवि, साहित्यकार, आलोचक, साहित्य-संस्थान और साहित्य प्रेमी नहीं था जो निराला की देखभाल करता। वाह रे कवि, कविता और कविता-प्रेम। धन्य है दारागंज में रहने वाला वह व्यक्ति जिसने निरालाजी को अपने पास रखा और दुनिया भर की यन्त्रणायें झेलीं और निरालाजी के नाज़ुक-मिजाजी के नखरे उठाये। बात यह भी ठीक ही है—कौन ठहराये अपने यहाँ इन कवियों को, इन दीवानों को। तूफानों को अपने घर में कोई ठहराना चाहेगा क्या ? हाँ, दूर से तूफान की शक्ति और उसकी विप्लवकारी प्रवृत्तियों की प्रशंसा की जा सकती है। इसकी गति को नापा जा सकता है। उसका विश्लेषण किया जा सकता है। मगर भूचाल को पालेगा कौन। तूफान और भूचाल को वही पाल सकता है जो भूचाल को बस में करने का मंत्र जानता हो, जो यह जानता हो कि इस तूफान के पेट में, इस भूचाल के गर्भ में, इस क्रान्ति के हृदय में, इस विप्लव की चेतना में अमरफल है, शाश्वत जीवन है, ईश्वरीय वैभव है, अनहद नाद है और कृष्ण की बाँसुरी की मीठी तान है। दीवाने को दीवाना ही संभाल सकता है। दीवाने को दीवाना ही जानता है।

कवि को मनीषी, परिभू और स्वयंभू भी कहा गया है। कवि को अपने मनोराज पर पूरा-पूरा अधिकार होता है। जब कवि का पूर्ण आधिपत्य होता है मन पर तो स्वाभाविक है कि मन की प्रजाओं यानी इन्द्रियों पर भी उसका यानी कवि का पूरा शासन होगा। किसी पर अधिकार प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि पहले अपने ऊपर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। "जितं जगत केन—मनोहि येन"। ऐसा श्रेष्ठ महान् कवि अपने मन और अपनी इन्द्रियों का सदुपयोग करना जानता है। वह

जानता है कि आँखें क्या देखने के लिये तरस रही हैं, कान क्या सुनने के लिये व्याकुल हैं, हाथ-पैर, किसको पकड़ना चाहते हैं, कहाँ जाना चाहते हैं, त्वचा किसका स्पर्श करना चाहती है। कवि अपने मन की जानता है। कवि का मन उसका मित्र होता है। चूँकि कवि अपना, अपने मन का, अपनी इन्द्रियों का स्वामी होता है, मित्र होता है—इसीलिये सारा विश्व कवि का मित्र होता है। परिभू होने के कारण वह सारी सृष्टि का नायक है, स्वामी है। सृष्टि का स्वामी बनने के लिये उसके पास सभी लौकिक और अलौकिक और ईश्वरीय सम्पदायें हैं—इसीलिये वह अपनी कविता के माध्यम से इन्द्रियों पर राज करता है। केवल मानवमात्र ही नहीं वरन् पूरी सृष्टि, चर-अचर, जड़-चेतन सभी उसके सहयोगी हैं, सब उसमें निवास करते हैं, वह सभी में निवास करता है। कवि स्वयंभू भी है। वह अपना कारण स्वयं है। वह अपने लिये स्वयं उत्तरदायी है। वह निरालम्ब होते हुए भी अपने में अवस्थित है, स्थित है। शायद इन्हीं कारणों से स्वयं निराकार ब्रह्म को भी तुलसी की मित्रता की सहायता लेनी पड़ी अपने को प्रतिष्ठित करने के लिये। निराकार ब्रह्म ने तुलसी की कवित्व शक्ति के माध्यम से प्रत्येक हृदय में अपना मन्दिर बना लिया। अयोध्या से भले ही राम निकाल दिये गये हों लेकिन तुलसी ने राम को एक घर के बदले करोड़ों जनमानसों में बसा दिया। यह है कवि-शक्ति। कवि ईश्वर का सलाहकार है।

कवि अपनी अनुभूतियों का वर्णन उन सभी अन्य अनुभूतियों के अनुसार या उनके ही रूप में करते हैं जिन्हें अन्य व्यक्तियों ने अपनी इन्द्रियों के माध्यम से अनुभव किया है। इन्द्रिय-सम्पर्क-जनित भाषा का अभिप्राय है कि कवि उन्हीं शब्दों से काव्य-रचना करता है जो आनुषंगिक हैं, पारस्परिक सम्बन्धों, मेल-मिलाप और साहचर्य के फलस्वरूप पैदा हुए हैं। साहचर्य-जनित सम्बन्धों की भाषा इन्द्रियगम्य वस्तुओं की अनुभूति है। शब्दों का प्रयोग हम अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में करते हैं और धीरे-धीरे उनमें अनुभवों और भावनाओं की ऊर्जा समाविष्ट होती रहती है। कवि इन्हीं शब्दों से अपनी कविता रचता है। प्रेम-काव्य की अभिव्यक्ति उन्हीं शब्दों के माध्यम से हो सकती है जिन्हें हम प्रेम करते समय या प्रेम के अवसर पर प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार एक धार्मिक कविता की रचना धार्मिक अनुभूतियों की भाषा में ही सम्भव है। कभी-कभी कविता इन्द्रियजनित अनुभूतियों पर आधारित भाषा के जिगर को चीरकर आगे निकल जाती हैं। जैसे अनन्तता, ब्रह्म, अमरत्व, स्वर्ग, नरक आदि-आदि का वर्णन करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है जो रहस्यात्मक और परम्परागत अनुभूतियों पर आधारित है।

आधुनिक या नयी कविता भी साधारणतया कविता ही है। आधुनिक कवि वही कह रहा है जिसे सभी युग के कवियों ने कहा है मगर हाँ, आधुनिक जीवन के हालात के परिपेक्ष्य में। आन्तरिक अनुभूतियों को कल्पना और ध्वनि में व्यक्त करना ही सदैव से कवियों की समस्या रही है क्योंकि इन्हीं के माध्यम से वे अपनी अनुभूतियों के महत्व को दूसरों तक पहुँचाते हैं। प्राचीन युग के कवियों ने प्राचीन युग में प्रचलित प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कही या अपनी अनुभूतियाँ अभिव्यक्त कीं। आधुनिक कवि अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति आधुनिक प्रतीकों के माध्यम से करता है जो आज के जीवन से चुने गये हैं या लिये गये हैं।

आज का हमारा विस्तृत व्यापक, दूर-दूर तर फैला हुआ, बिखरा हुआ, व्यग्र अशांत, भौतिक युग हमारे वातारवण में हमारी आन्तरिक, मानसिक दशाओं के लिये उपयुक्त बाहरी प्रतीक प्रदान नहीं कर पा रहा है क्योंकि हमारा बाह्य-संसार हमें ऐसी सुगम और ग्राह्य भाषा देने में असमर्थ है जिससे हम अपने जीवन की अनुभूतियों को आसानी से जोड़ सकें। हमारी आन्तरिकता, आन्तरिक शक्तियों द्वारा प्रभावित होने के बजाय, हमारी आन्तरिकता को यह बाह्य संसार अपनी बहिर्मुखता से ही प्रभावित कर रहा है और यह विश्वास दिलाने पर तुला हुआ है कि मानव की भीतरी अनुभूतियों और उसके भीतरी जीवन की अपेक्षा अमानविक, भौगोलिक, यांत्रिक और अटामिक घटानाएँ ही इस संसार में सबसे महत्वपूर्ण हैं। बहरहाल, प्रत्येक घटना मनुष्य के लिये उसके मस्तिष्क में घटित होने वाली मानसिक घटना ही है। इसमें सारा विश्व और सभी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ शरीक हैं। बाहरी दुनिया आदमी की भीतरी दुनिया है और अपने आन्तरिक संसार को अपने मस्तिष्क में सुनियोजित करना ही उसकी मूल समस्या है।

इसीलिये कविता की शाश्वत समस्या, आन्तरिक अनुभूतियों को बाहरी वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त करना बराबर ही बनी रहती है क्योंकि बजाहिर तौर पर आधुनिक संसार में बाहरी वस्तुयें हमारी आन्तरिक ध्वनि को प्रतिध्वनित नहीं कर पा रही हैं। मनुष्य ने आज के इस संसार को सीखा है, आविष्कृत और सुसंगठित किया है। यह संसार उसकी चेतना और आविष्कारी इच्छा शक्ति का एक दृश्य रूप है एक पदार्थ है। इसीलिये मशीन, यंत्र और देशीय दूरियाँ जो अपने विस्तार से इस पर दबाव डालती हैं, उसके ही आन्तरिक और आत्मिक जीवन के भौतिक तत्व और पदार्थ हैं, उसके मस्तिष्क और मन के भीतर के प्रतीक हैं। कदाचित वे बज़ाहिर तौर पर इसके अन्तर्मन की आत्मलीनता के

प्रतीक हैं। मनुष्य ने बाहरी दुनिया में जिन-जिन वस्तुओं का आविष्कार और अनुसंधान किया है, उन पर अपने अन्तर्मन और अन्तश्चेतना में भी पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करने में ही उसका विवेक, पुरुषार्थ और मनुष्यत्व है। अपनी परिस्थितियों पर विजय-प्राप्ति की आन्तरिक कल्पना शक्ति मनुष्य के पास है। आधुनिक या नयी कविता हमारे बाहर और भीतर के संसार में होने वाली कशमकश, द्वंद्व और संघर्ष में संतुलन स्थापित करने का एक दृष्टिकोण, एक प्रयास या एक पहलू है। बाहर से तुच्छ, कुरूप और व्यर्थ लगने वाली वस्तुओं के हृदय में सौन्दर्य देखना और उनमें एक धड़कती हुई रागात्मक लय की धड़कनें सुनना, आधुनिक कवियों की सबसे बड़ी उपलब्धि है और आधुनिक कविता की सबसे बड़ी विशेषता है।

आधुनिक कविता में और आधुनिक गद्य में भी एक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और वह प्रवृत्ति है पर्दों को फाड़ डालने की यानी पर्दाफाश करने की। आज का कवि और लेखक जब मुड़कर अपने अतीत की ओर देखता है तो पाता है कि पिछली पीढ़ी ने आज की दुनिया पर क्या-क्या मुसीबतें नहीं लाद दी हैं, जिसमें सबसे बड़ी है युद्धों की विभिषिका और युद्ध। अतीत की सभ्यता ढह चुकी है। राजनीति ने घृणा और ईर्ष्या के बीज बोये हैं। संस्थाबद्ध धर्मों ने बर्बादी को बढ़ावा दिया है। राजनीति ने, धर्मों ने, धर्मगुरुओं ने, अखबारों ने, नवयुवकों यानी आज की पीढ़ी के साथ विश्वासघात किया है "जिन पर तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे।" यह आज की पीढ़ी पुरखों के छोड़े हुए कर्जों को लेकर पैदा हुई है। उसका भ्रम टूट चुका है और इसीलिये वह पुराने को तोड़ डालने पर आमादा है। लानत भेजो बुजुर्गों पर, लानत भेजो अतीत पर। हर चीज पर खुलकर बात होनी चाहिये। ये प्रवृत्तियाँ आज के साहित्य में, आज की कविता में साफ-साफ दिखाई पड़ती हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि आधुनिक कविता अनियमित पद्धति और अधूरे वाक्यों के माध्यम से एक बिम्ब प्रस्तुत करती है, एक तस्वीर बनाती है ठोस वस्तुपरक जीवन की। Herbert Read के शब्दों में "The modern poet does not deny the right of regular verse to exist or to be poetic. He merely affirms that poetry is sincerity and has no essential alliance with regular scheme of any sort. He reserves the right to adapt his rhythm to his mood, to modulate his metre as he progresses."

आधुनिक कविता में जब हम विचारों की एक लयात्मक शृंखला या सिलसिला ढूढते हैं तो मूर्त रूप से उसमें एक असंगति और अन्तर्विरोध

पाकर हमे आश्चर्य होता है। प्रत्येक कवि मे ये वैचारिक असम्बद्धता और अन्तर्विरोध कहीं न कहीं, कभी न कभी परिलक्षित हो जाते हैं। शायद इसके अनेक कारणों में एक कारण कवि के स्वप्नों के महल का चूर-चूर हो जाना है या उसका भरम टूट जाना है। यह भग्नमनोरथ कवि के उद्‌गार हैं। यह कवि विशेष में ही नहीं आज के युग की समूची कविता में पाया जाता है। आदमी के जीवन की चमक-दमक, उसके मुख की शोभा और उसका प्यारा-प्यारा रूप बुझ चुका है। कवि हैरान कि इतना दुःख, इतनी पीड़ा क्यों ? इतनी कुरूपता क्यों ? जैसा है और जैसा होना चाहिये के बीच उलझा हुआ है कवि। वस्तु-पैशाचिकता उसे पूर्ण रूप से दबोच चुकी है और उससे दबकर, उसके बोझ से वह कराह रहा है। आदमी की बनाई हुई मशीन, यंत्र और यांत्रिकता ने आदमी के जीवन-रस को जैसे चूस लिया हो। सारा सौन्दर्य कुम्हला चुका है, जल चुका है। आदमी यंत्रों का दास हो गया है। आदमी उदास हो गया है। यह उदासी किसी आन्तरिक चिंतन का परिणाम नहीं है या बुद्ध का सर्वम् दुःख नहीं है जो गहन जीवन विवेचना की उपज हो। यह ऊपर से थोपी हुई निराशा है। यह बाहरी दुनिया का दबाव है जो उसे कोल्हू में पीसकर उसका रस चूस चुका है और उसे मृत-प्राय कर चुका है। सुन्दरता की माँग उजड़ चुकी है, बेजान पथराई आँखें, सूखी हुई सरिता, टूटे हुये मनोरथों के इन्द्रधनुष यही है इस युग की पहचान। भग्नमनोरथा सती की तरह अपने रूप की, अपने ही सौन्दर्य की निन्दा करने लगा है आज का कवि। इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है। जीवन का इतना गंभीर रूप देखना, इसमें कहीं भूल हो सकती है। जीवन के अनुभवों के प्रति ईमानदार होने के लिये कवि जीवन की कुरूपता पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है। रुपर्ट ब्रुक की ये बात काफी हद तक ठीक ही मालूम होती है "There are common and sordid things-situation or details—that may suddenly bring all tragedy or at least the brutality of actual emotiom, to you. I rather grasp relievedly at them, after I have beaten vain hands in the rosy mists of poet's experiences." उनकी बात से यह ध्वनि निकलती है कि "the world is more full of weeping than you can understand." कविता की विधा में, शैली में और विषयवस्तु में आमूल नवीनता और परिवर्तन आज की कविता की पहचान है। भाषा साधारण आदमी के रोजमर्रा के जीवन के करीबतर होती जा रही है। यह सही दिशा में सही कदम है। भाषा कतिपय

तथाकथित सभ्य और सुसस्कृत चन्द लोगो के कल्पना ससार को छोड़कर जनसाधारण की रोजमर्रा हो चुकी है और समृद्धतर होती जा रही है। आधुनिक कवि ने कविता के क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया है और अपने पूर्वजों के दृष्टिकोण से उसमें काफ़ी भिन्नता है। वह यथार्थवाद पर जोर न देकर यथार्थ पर जोर दे रहा है। लोगों के स्वप्न कितने सुन्दर होते हैं और उनका जीवन, वास्तविक जीवन, कितना कुरूप और कष्टप्रद। आज का कवि वही कह रहा है जो कवि कहते आये हैं मगर अपने तरीके से। मगर इस आक्रोश, घृणा, दबाव और चीत्कार के हृदय में वही कोमलता, सहानुभूति और करुणा है। यह रूखापन, खुरदुरापन केवल ऊपरी सतह या परत पर है। यह आक्रोश करुणा की कोख से ही पैदा हुआ है। आधुनिक कविता मानव मन की गहराइयों में छिपे हुए रहस्यों का उद्‌घाटन है जिसकी जड़ें करुणा के गर्भ में ही हैं। यही अनादिकाल से कविता की जन्मस्थली है। अब तो विज्ञान और कविता दोनों हाथ मिलाते हुए नजर आते हैं। कवि दर्शन ही यथार्थ दर्शन है। विज्ञानी लड़खड़ा सकता है हलचल में, कवि नहीं। वैज्ञानिक वैज्ञानिक की बात काट देता है, उलट देता है मगर कवि कवि की बात नहीं काटता, शेक्सपीयर की बात को वर्डसुवर्थ असत्य नहीं कहता या तुलसी की बात को रहीम काटकर अपनी बात प्रतिष्ठित नहीं करते और न करना चाहते हैं। मैक्स प्लैंक जिन्हें क्वान्टम मिकैनिक्स का जन्मदाता कहा जाता है, एक बड़ी सारगर्भित बात कहते हैं, कितना बड़ा सत्य है उनके इस कथन में, "Science means unresting endeavour and continually progressing development toward an aim which the poetic intuition may apprehend but which the intellect can never fully grasp."

अंशजी की कवितायें भी आज के जीवन की विसंगतियों की ध्वनि हैं किन्तु कुछ अंतर के साथ। आधुनिक कविता अधिकांशतः प्रेत-बाधित घर में रह-रह उठने वाली भटकती रूहों की आवाजें हैं जो चिलचिलाते अँधकार में कुत्तों के रोने और सियारों के फेकरने से मिलकर वातावरण को और भयावह और गंभीर और कई गुना संजीदा बना देती हैं। आधुनिक कविता की रूह चीड़घर (mortuary) में रहती है। आधुनिक कविता कभी-कभी जेठ की दोपहरी में तपते हुए सूर्य की अंधा कर देने वाली रोशनी भी बन जाती है। कहीं-कहीं, बस, कहीं-कहीं इस तपती दोपहरी में एक बबूल का साया मिल जाता है। अंशजी भी सौफ़ीसदी आधुनिक कवि हैं। मगर उनकी कवितायें गोधूलि

बेला मे निवास करती है जहाँ अभी थोड़ी-थोड़ी रोशनी है थोड़ा थोड़ा अँधेरा। उनकी कविताओं में युग की पीड़ा तो बोल ही रही है मगर उसमें एक अख्तियार भी है। दर्द की मर्यादा का भी ध्यान है। पीड़ा चुनौती तो है मगर कवि पीड़ा को स्वीकार करके उसके वेग को सहने योग्य बना देता है। दर्द विजित हो जाता है। अपने विनाश को भी एक ऐसा आधार बना देता है या बना देना चाहता है जिस पर कभी जीवन लहरायेगा। आने वाली फ़सलों और नसलों के लिये अपने जीवन को खाद बना देने की भावना मानवता का परम आदर्श है, परम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है और यह परम पुरुषार्थ बस कवि के पास ही होता है। कवि बहुत व्यापक शब्द है और इसे कविता लिख लेने वालों या कविता कर लेने वालों तक ही सीमित मत कीजियेगा। कवि के जीवन की खाद पर कैसी हँसती, बोलती, चहकती मानवता की फसल लहलहायेगी इसे सोच पाने के लिये भी कवि कल्पना की आवश्यकता है।

मैं
एक लहलहाती
खड़ी फसल
न हो सका
न सही
कोई बात नहीं।
हमें
खाद होने से
कौन
रोकेगा ?
खाद !
आने वाली फसल के लिये,
नसल के लिये,
आवश्यक और
उपयोगी है।

अंशजी के एक दूसरे मुक्तक में थके हारे टूटते हुए आदमी की दिनचर्या है। खाली डिब्बों के प्रतीक से जीवन और जेबों की रिक्तता की ओर संकेत किया गया है। अपनी उलझनों को छिपाने की कोशिश में

बच्चों के भूखजनित क्रन्दन को शांत कराने में उनको प्रताड़ित करना आदमी के असहाय और निढाल हो जाने की चरम सीमा है। दिल खून होकर रह जाता है।

अलस्सबाह उठना और बासन खंगारना
आँगन से अपनी परछाई बुहारना।
कमरे में खाली डिब्बों का लुढ़कना
बच्चों को डाटना कुत्ते को मारना।

ज़माने के दर्द को अपनी बात अपने दुःख अपने दर्द के माध्यम से पूरी तरह से अपने पाठकों तक पहुँचाने में अंशजी को अच्छी सफलता मिली है। उनकी भाषा और शैली अधिकतर अन्य आधुनिक कविताओं के चेहरों पर लिपटे कुहासे से मुक्त है। इसीलिए मैंने कहा है कि उनकी कवितायें गोधूलि वेला में निवास करती हैं। मगर मामला इतना साफ भी नहीं है। अंशजी की पीड़ा, बेचैनी, असहायता और तड़प बहुत सूक्ष्म है और उसी के अनुरूप भाषा भी व्यंजनात्मक है। जैसे गीली लकड़ी को आग देने से वह सुलगती तो है ही धुवाँ तो उठता ही है आँख में आँसू भी आते ही हैं, आँखें जलती ही हैं। उसके पास बैठने वालों को तकलीफ तो उठानी पड़ेगी। मगर जरा उस गीली लकड़ी की भी सोचिये जिसका जीवन-रस बूंद-बूंद करके जल रहा है मगर वह अपने खून के हर क़तरे से आग को बुझा देने पर भी आमादा है—यह है कवि की अन्तर्व्यथा और विसंगतियों और वेदनाओं से जूझने का अदम्य साहस और धैर्य। गीली लकड़ी को जल तो जाना ही है या अधजली रह जाना है। यही कवि जीवन या जीवन की करुण कहानी है।

"कोयला भई न राख"

अंशजी नयी कविता के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी काव्य रचना करते हैं और उनकी मर्यादाओं का पूर्ण रूप से निर्वहन भी करते हैं। अंशजी स्वभाव से सरल निश्छल, सहज और उदार हैं। शायद इसीलिए उनकी कविताओं में भी इन सब काव्योचित गुणों का स्वाभाविक परिपाक है। इनकी कवितायें पहेली नहीं बुझाती हैं, सीधे जीवन के सत्य पर यथार्थ के हथौड़े से चोट करती हैं। इनकी कविताओं के अधरों पर लिपिस्टिक न होकर जीवन का स्वाभाविक अपना रंग है। उनकी कविता में स्पष्ट दृष्टिगत सत्य ही सौन्दर्य बन जाता है। वे जो बाहर देखते हैं वही अन्दर भी सुनते हैं। बाहर-भीतर एक ही आवाज है, एक ही रूप है। एक ही सत्य है, एक ही सौन्दर्य है अंशजी की कविताओं में। इसीलिए उनकी कवितायें जीवन के तद्‌रूप हैं। जैसा देखना. जैसा सोचना. जैसा

लगना, जैसा अनुभव करना, उसे वैसे का वैसा ही कविता मे उतार देना अंशजी की विशेषता है। वैसे यह गुण बड़ी मुश्किल से हाथ आता है। कविता में अर्थ ढूँढना एक बीमार लक्षण है। अर्थ क्या है ? किसी चीज का कोई अर्थ होता है क्या ? क्या अर्थ है पृथ्वी का ? क्या अर्थ है हवाओं का ? क्या अर्थ है आकाश में घिरे हुए वारिपूर्ण बादलों का और कड़कती हुई बिजली का और बादलों को देख कर नाचते हुए मोर का ? जीवन का ही क्या अर्थ है ? वही अर्थ है जो लगा लीजिये। कविता में शब्द वाक्य, वाक्यांश, उपमायें, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार, छंद या छंद विहीनता, लय, भाव आदि आदि मिलकर एक वातावरण पैदा करते हैं जिनसे कवि भी और पाठक भी सराबोर हो जाते हैं। जैसे वर्षा में प्रकृति नहा उठती है, तनमन भींग जाता है वैसे कविता तनमन प्राण इन्द्रियों सब को भिगो देती है, यही कविता का अर्थ है। यही जीवन का अर्थ है। यही कविता की वर्षा में भींगकर जीवन पर सदियों से जमी धूल धुल जाती है, कविता हमें ताजादम कर देती है। शब्दों, स्पन्दनों, भावों और भाषा के माध्यम से एक वातावरण बुनना जिसमें सभी गिरफ्त हो जायँ अंशजी की कविताओं की विशेषता है। दिल में कुछ होने लगता है–यही अंशजी की कविता की पहचान है। 'गुरुता' में बेचारगी से उद्भूत व्यंगात्मक आक्रोश, उपदेशों का खोखलापन और आदमी को नपुंसक बना देने की साजिश के साथ ही अपनी अस्मिता की सुरक्षा के प्रति सजगता है। युग के प्रहार से बचने के लिये व्यक्तित्व में गुरुता लाने के लिये हाथ में पत्थर होना आवश्यक है :

आदमी,
खाली हाथ आता है,
खाली हाथ जाता है।

क्या है हमारे हाथ में ?
तन पर है राजा का पहरा,
मन पर मठ का,
धन पर शठ का।

श्वासों ने माँगा तो
आश्वासन मिले–
सपनों में जीत लिये किले।

माँगो मत किसी से कुछ
खाली हाथ आदमी
हल्का लगता है।
हाथ में तुम्हारे यदि कुछ नहीं तो
उठा लो यह
रास्ते पड़ा पत्थर।
लोग ठोकर खाने से बचेंगे;
पुण्य-पाप की बात नहीं,
इससे तुम्हारा वज़न बढ़ जायगा।
सच मानो,
ज़माना डर जायगा।

'उन्मीलन' में उस 'मानवता' की ओर इशारा किया गया है जो इस युग में सिर्फ एक अभिप्रायहीन, मूल्य-शून्य खोखला व्यापार बनकर रह गई है। आदमी को लूटने के लिये 'मानवता' अँधकार और उड़ती हुई धूल के आवरण का काम करती है। मानवता का दम भरो और आदमी को लूटो यही युग धर्म बन गया है। बड़ी चुभती हुई और पैनी व्यंजना है। मानवता की बात करने वाले तथाकथित मानवता के पुजारी मानवता को नंगी करके उसे नचा-नचा कर देखते के आदी हो चुके हैं। क्रूरता की पराकाष्ठा है। कदम-कदम पर द्रौपदियाँ निर्वसन की जा रही हैं। कवि की कराह और लाइलाज दर्द रुला जाता है, शक्तिहीन कर जाता है।

अंशजी की "बापू : आधुनिकता के पाश में " एक चुटीली और नुकीली कविता है। गांधीजी के साथ मानवता, महान् आदर्श और भारतीय संस्कृति के चिर नवीन मूल्य उठ गये। सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श पुरानी और किताबी बातें हो गईं। गांधी के विचारों और गांधीवाद के मूल्यों को बड़ा संजोकर तिजोरियों में बन्द कर दिया गया है। गांधी का नाम वोट की राजनीति में सफलता हासिल करने के लिये प्रयोग किया जाता है। गांधी के आदर्श सिर्फ समारोहों में, लोगों को धोखा देने के लिये दोहराये जाते हैं। इन महान् मूल्यों के अवमूल्यन और इनकी गिरती हुई कद्रों को कवि ने बड़े व्यंजनात्मक ढँग से और दुःख दर्द में बसी हुई, पली हुई शब्द-ध्वनि में व्यक्त किया है और अब तो, खैर गांधी को खुल्लम खुल्ला गालियाँ दी जा रही हैं, उन्हें अपमानित किया जा रहा है। पतित व्यक्ति का यह भी एक लक्षण है कि वह अपने को लाइम लाइट में लाने के लिये महान् पुरुषों पर कीचड़ उछालता है बिना उन्हें समझे। यह गिरावट की इन्तिहा है। पाश्चात्य भौतिकवाद का चढ़ा हुआ या चढ़ता हुआ नशा हमें पागल कर चुका है—यह हकीकत कितनी

ख़ूबसूरती से व्यंजित और ध्वनित हुई है इस कविता से आप फ़ैसला कीजिए :

पूज्य बापू !
नमन है
स्वीकार कर लो,
भिनभिनाते वन्दना के शब्द,
लगते हैं, बड़े ही अजनबी से,
मतलबी, सूत्रों पिरोये गये,
बासी गुलाबों के,
बेरहम अम्बार में
वे तोड़ते दम;
प्रगति पथ पर
बहुत आगे .....बहुत आगे
निकल आये हम।
नमन है,
स्वीकार कर लो।
चरण चिन्हों को तुम्हारे
मढ़ा हमने स्वर्णपत्रों से
और अब जब
तीर्थ से बन गये पद-चिह्न हैं ये
मैं इन्हीं पर चलूँ;
शिव ! शिव !
ये बड़े ही पूज्य हैं मेरे लिये
इसलिये बापू !
नमन है
स्वीकार कर लो।
बात के व्यवहार के
तुमने दिये थे, जो हमें सिद्धान्त।
सुनहरी जिल्द वाली रोकड़ों में बन्द
सारा वाङ्मय बापू ! तुम्हारा
रख दिये हमने
रुपहली आलमारी में।
राष्ट्र की सम्पत्ति ये, तुम।

इसलिये मै
व्यक्तिगत व्यवहार में
इस वाङ्मय का

नहीं करता कभी इस्तेमाल,
हाँ अमूमन,
भाषणों, लेखों, सभाओं में
इन्हीं को
आँख मूदे
अभय हो
बेधड़क इस्तेमाल करता हूँ।
बहुजन हिताय।
बहुजन सुखाय।
नमन है
स्वीकार कर लो।
नये युग के बदलते परिवेश में
मैं सात्विक सपने तुम्हारे क्या करूँगा
स्वप्न सच होते नहीं, यूँ भी
पश्चिमी रंगीनियों का स्वर
अनूठा और मादक
विवश हूँ;
लो
नमन है
स्वीकार कर लो

बड़ी ज़बरदस्त समाज चेतना है, युग चेतना है अंशजी की कविताओं में। मगर कविता का रंग कहीं से फीका नहीं पड़ने पाता। ऐसी ही कवितायें युगीन और समकालीन होते हुए भी सर्वयुगीन और सर्वकालीन होती है। पीड़ा, दर्द, वेदना, करुणा सर्वयुगीन है। आदि मानव की कराह आज भी सुनाई दे जाती है—मगर सुनने वाले कान बस कवि के पास होते हैं। आदम का दर्द, आदम की पीड़ा, आदम की बेबसी, आदम की मासूमी, हव्वा का नारी स्वभाव, अपनी बेगुनाही यानी मासूमी के लिये स्वर्ग से उनका निष्कासन यह सब आदमी को और विशेषकर कवियों को विरासत में मिला है। आदम की तरह बेगुनाह आज भी दण्डित हो रहे हैं। यह पीड़ा- यह दर्द कवि की वाणी से

फूट फूट कर कविता बन कर प्रवाहित होता आया है वही पुराना दर्द आधुनिक कविता में बहुत गाढ़ा हो गया है। वह पुरानी गुत्थी कवि आज भी सुलझाने पर आमादा है :

जो उलझी थी कभी आदम के हाथों
वो गुत्थी आज तक सुलझा रहा हूँ।

'फ़िराक़'

मुझे पूरा भरोसा है सुधी पाठकों पर, जो अंशजी की कविताओं को अपना ओढ़ना-बिछौना बना लेंगे। इस कविता-पुस्तक को प्रत्येक घर, प्रत्येक पुस्तकालय में होना चाहिए। अपनी भूमिका में जॉ काकटूयू के इस विरोधाभासपूर्ण वाक्य से समाप्त करना चाहता हूँ कि Poetry is indispensable if only I know what for" ? प्रश्न आवश्यक है- सोचते रहियेगा।

वसंत पंचमी
25 जनवरी, 1996
35/13, बटलर मार्केट
जवाहर लाल नेहरू रोड
इलाहाबाद

(रमेश चन्द्र द्विवेदी)

नयी कविता

महाप्राण निराला नवगतिं, नवलय, ताल-छन्द-नव की कामना करते हुये छन्द-नव के निर्माण में जुट जाते हैं। हिन्दी साहित्य में गद्य गीत अवतरित होता है। रबड़ छन्द, केचुआ छन्द कहकर लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। इन रचनाओं में छायावाद की छाया तो है पर छायावादी, वस्तुस्थिति से पलायन की प्रवृत्ति न होकर यथार्थ की पकड़ गहरी दृष्टिगत होती है। ये कवितायें वर्तमान मानसिक स्थिति को अधिक प्रतिबिम्बित करती हैं।

प्रगतिवाद के आते-आते कविता का विकास तो हुआ पर उस पर राजनीति की पकड़ गहरी होने का आरोप लगने लगा। तत्कालीन कवि, कार्ल मार्क्स से अधिक प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

पूर्ण प्रौढ़ता के साथ पहला तारसप्तक एवं दूसरा तारसप्तक (1951) का प्रकाशन होता है। इस ऐतिहासिक क्रम के बाद नयी कविता का असली रूप सामने आता है, जब तत्कालीन कवियों ने तत्कालीन कविता को दूसरे तारसप्तक के इर्दगिर्द पाते हुये भी कुछ अर्थों में भिन्नता का अनुभव किया। सन् 1953 में नये पत्ते के प्रकाशन के साथ नयी कविता का विकसित रूप सामने आता है। सन् 1954 में डॉ० जगदीश गुप्त एवं राम स्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाले संकलन "नयी कविता" में अपने समस्त सम्भावित प्रतिमानों के साथ नयी कविता प्रकाश में आई।

नयी कविता का मूल स्रोत आज के युग-सत्य और युग-यथार्थ में निहित है, इसीलिये उसमें गद्य का यथार्थ और काव्य की संवेदनशील अभिरुचि दोनों एक साथ सर्वथा नयी भाव-भूमि पर अनुभूति को प्रस्तुत करती हैं। नयी कविता लघु मानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है, जो एक ओर आज की समस्त तिक्तता एवं विषमता को भोगते हुये, समस्त तिक्तता एवं विषमता के बीच अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने हेतु संघर्षरत है। वह विशाल मानव प्रवाह में बहने के साथ-साथ अस्तित्व के यथार्थ को भी स्थापित करना चाहता है।

नयी कविता की मूल स्थापना के मुख्य तत्व :

1 नयी कविता का विश्वास आधुनिकता मे है

2 नयी कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है उसमे वर्जनाओं कुण्ठाओं की अपेक्षा भुक्त यथार्थ का समर्थन है।

3 भुक्त यथार्थ का समर्थन वह विवेक के आधार पर करना अधिक न्यायोचित मानती है।

4 उपरोक्त तीनों के साथ नयी कविता क्षण के दायित्व और नितान्त समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है।

आधुनिकता का तात्पर्य विकृतियों से न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है, जो विवेचना और विवेक के बल पर प्रत्येक वस्तु के प्रति मानवीय दृष्टि, यथार्थ दृष्टि देती है।

नयी कविता भावबोध के स्तर पर अन्य काव्य प्रवृतियों से भिन्न है। भिन्नता मात्र उद्देश्यगत नहीं दृष्टिगत भी है। "जीवन प्रवाह में उसकी सन्दर्भयुक्त अभिव्यक्ति नयी कविता का भावबोध है।"

सौन्दर्य बोध की दृष्टि से नयी कविता सौन्दर्य को यथार्थ से पृथक् वस्तु नहीं मानती। यथार्थहीन सौन्दर्य, निरपेक्ष सौन्दर्य या सन्दर्भहीन सौन्दर्य बोध, जहाँ भुक्त क्षणों की सार्थकता और समसामयिकता का आग्रह नहीं है वह मानव दृष्टि को कुण्ठित एवं विकृत करता है। नयी कविता का आग्रह उस सौन्दर्य के प्रति नहीं है जो मात्र अलौकिक या अदृश्य के समय-नियम से नियंत्रित होकर व्यक्त होता है। यही कारण है कि नयी कविता के लिये यथार्थ से विकसित तथाकथित विकृत भी महत्वपूर्ण है और अपने आग्रहपूर्ण अस्तित्व से नये कवि के भाव बोध को प्रभावित करती है। नयी कविता का सौन्दर्यवाद बौद्धिक अनुभूति और बुद्धिवाद को भी स्वीकार करता है। नयी कविता, भुक्त क्षणों में आस्था होने के कारण सौन्दर्य को भोगने और उसके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को स्वीकार करने में विश्वास रखती है। इन्हीं कारणों से नयी कविता चौंकाने वाली, चमत्कारिक तथा कुछ पाठकों को रसहीन लगती है। कुछ लोग विकृतियों तक ही उसके भाव को सीमित मानते हैं।

परिवेश की दृष्टि से नयी कविता मुख्यतया दो विचारों से प्रभावित है :

1. नितान्त समसामयिकता की दृष्टि,
2. अस्तित्वपूर्ण क्षण के प्रति जागरूक चेतना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि।

समसामयिकता के दायित्व निर्वहन के लिये आवश्यक है कि कवि के भीतर आधुनिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि के साथ, लघु मानव के लघु परिवेश के प्रति आस्था हो। समसामयिकता का उद्देश्य यह भी है कि कवि में उस अनुभूति का भी महत्व स्थापित हो, जो वह भुक्त क्षणों के साथ-साथ उपलब्धि में पाता है, ग्रहण करता है। आधुनिकता जिस परिवेश का निर्माण करती है, समसामयिकता उस परिवेश के प्रति व्याप्त जागरूकता को क्रियाशीलता प्रदान करती है।

नयी कविता उस मानव व्यक्तित्व की स्थापना और उसकी उपयोगिता से विकसित होती है, जो समस्त विद्रूपताओं और कटुताओं के बावजूद मनुष्य को उसकी मूल मर्यादा के प्रति निजित्व और अस्तित्व के प्रति जागरूक रखना चाहता है। नयी कविता का यह आग्रह कपोलकल्पित नहीं है, इसमें समस्त मानव चेतना का वह अनुभव है जो एक सीमा पर यथार्थ को पकड़ना चाहता है। उसे कुण्ठा का साधन नहीं बनाना चाहता। यही आग्रह सम्पूर्ण चेतना को वास्तविकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम रहा है। देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार नयी कविता की अनुभूति-शक्ति विकसित हो रही है क्योंकि आज के यथार्थ जीवन के बाह्य और आन्तरिक सत्यों के साथ वह अधिक भाव-स्निग्ध और स्वपरिचित हो पाती है।

प्रवृत्तियों की दृष्टि से नयी कविता की पाँच प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं :

1. यथार्थवादी अहं – इसमें यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ कवि अपने को उस यथार्थ का अंश मान कर उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, गजानन मुक्तिबोध, कुँवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि की रचनायें आती हैं।

2 व्यक्ति-अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रवृत्ति – जिसमें आत्मानुभूति की समस्त संवेदना को बिना किसी आग्रह रखने की चेष्टा दिखाई पड़ती है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रभाकर माचवे तथा मदन वात्स्यायन का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

3. आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंगात्मक दृष्टि – इसमें वर्तमान कटुताओं और विषमताओं के प्रति व्यंग्यपूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इस श्रेणी में गिरजा कुमार माथुर, नेमिचन्द्र जैन और धर्मवीर भारती की रचनायें समादृत हैं।

4. रस और रोमांच के साथ-साथ आधुनिकता और समसामयिकता का प्रतिनिधित्व – इस कोटि में लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र एवं विजय देव नारायण साही की रचनायें आती हैं।

5. चित्रमयता एवं अनुशासित शिल्प की प्रधानता – आधुनिकता के सन्दर्भ में होते हुये भी समस्त यथार्थ को बिम्बात्मक रूप से ग्रहण करना इसकी प्रमुख विशेषता है। चित्रमयता एवं अनुशासित शिल्प के अन्तर्गत जगदीश गुप्त, केदार नाथ सिंह और शमशेर बहादुर सिंह की रचनायें प्रस्तुत होती हैं।

नयी कविता के भाव पक्ष एवं अभिव्यंजना पक्ष के मुख्य बिन्दु निम्न प्रकार है :

भावपक्ष

1. आधुनिकता बोध – देश-विदेश के नवीनतम कल्याणकारी ज्ञान एवं विचारधारा के अनुकूल होने की चेष्टा,
2. अस्वीकृति – अन्धविश्वासयुक्त परम्पराओं, आदर्शों, रूढ़ियों, मान्यताओं को नकारने की प्रवृत्ति,
3. कवि का स्वाभिमान – अनुभूति के स्तर पर समझौतावादी प्रकृति की उपेक्षा,
4. अनुभूतियों के प्रति ईमानदारी – मानव-आक्रोश, कुण्ठा और विद्रोह का निःसंकोच चित्रण,
5. सहानुभूति का व्यापक स्तर – जीवन के मधुर, तिक्त, कटु, शिव, अशिव, सुन्दर, असुन्दर सभी अनुभवों का यथावत चित्रण,
6. सामाजिक परिवर्तन की आकुलता और वर्तमान के प्रति असंतोष।

अभिव्यंजना पक्ष

1. भाषा की अकृत्रिमता – स्वाभाविक सहज भाषा के प्रयोग का आग्रह भाषा के किसी प्रयोग से परहेज नहीं, श्लीलता, अश्लीलता का भेद नहीं।

2. शब्द विन्यासजन्य लयात्मकता की अपेक्षा अर्थगत लय का अधिक ध्यान, प्रत्यक्ष लयात्मकता के अभाव में कविता गद्य के निकट, अर्थगत वैशिष्ट्य के कारण काव्य की प्रतिष्ठा,

3 व्यंग्य की प्रधानता,

4 संक्षिप्तता और स्पष्टता,

5 नित्य नवीन बिम्ब योजना।

नयी कविता में छायावाद की भाँति वस्तुस्थिति से पलायन की प्रवृत्ति न होने के कारण वह आज की मानसिक स्थिति का सही प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने में सक्षम है। नयी कविता प्रगतिवाद के मतप्रधान काव्य प्रवृत्ति से पृथक् यथार्थ की गतिशीलता को स्वीकृति प्रदान करने के कारण भ्रमित नहीं होती, यही कारण है कि वह दिनोंदिन विकास के पथ पर बढ़ती जा रही है।

नयी कविता पर आरोप लगाया जाता है कि वह वैयक्तिक, एकांगी और मतवादी कविता है, जिसमें साहित्यिक परम्पराओं और मर्यादाओं का उल्लंघन किया जाता है। नयी कविता का विस्तृत भाव क्षेत्र ही इन आरोपों का सही उत्तर है जो एक साथ और एक गति से भावना के विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्ति पा रहा है। नयी कविता का विश्वास लघु मानव की जागरूकता में है जो अभी तक सर्वथा उपेक्षित रहने के कारण अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ था।

संक्षेप में नयी कविता आधुनिकता बोध सम्पन्न मानवतावादी कविता है। मानव-नियति का साक्षात्कार उसका लक्ष्य है। बौद्धिकता उसका अतिरिक्त गुण है। वह परम्परा से जुड़ती है परन्तु रूढ़ियों को अस्वीकार करती है। विवेक की कसौटी पर खरी उतरने वाली आस्थायें ही ग्राह्य हो सकती हैं।

मुरलीधर सिंह 'अंश'

गद्य गीत

रात आधी, !
नींद घायल,
तारिकाओं की जवानी
जल रहा,
सिन्दूर किसका ?
कुछ अंगुलियों ने दबायी
एक बेसुध सी हथेली
अंकित किये कुछ चित्र उन पर
प्रेम के दो चार कतरे
और
पीड़ा की उदासी।
अधजले घर की लकीरें
ख़ाक हो जायें बुरा क्या?
जुगनुओं की ज्योति धूमिल
शलभ के निर्जिव सपने।
रात आधी,
फिर वही दीपक जलाये,
नदी के उस पार
जल में, जोहता था,
एक व्याकुल-सा
उदासे नयन वाला।

माटी के दीप

मैं इसीलिये
माटी के दीप जलाता हूँ
शायद तेरा स्पर्श
इन्हें कंचन कर दे।
वैसे तो,
हर रोज वर्त्तिका
जलते जलते बुझ जाती है।
चुक जाता है
नेह दीप का,
ढल जाती है
रात स्नेह को।
मैंने जब भी
स्पर्श किया,
तेरी कंचन छाया
तेरी अलकों बीच भर गया
माटी का सिन्दूर।
इसीलिये
मजबूर आज
माटी के दीप जलाता हूँ
शायद तेरा
स्पर्श,
इन्हें कंचन कर दे।

पाती

यूं तो कितनी बार,
तुम्हारे कर चूमा था।
किन्तु
विदा के अन्तिम क्षण में
जब तुमने,
चरणों का स्पर्श किया था,
एक अजीब मधुमय कम्पन सी,
एक अजीब मधुमय सिहरन सी,
रोम, रोम में व्याप्त हो गई
मेरी लघुता को मानो
हिमगिरि के ऊँचे शिखर मिल गये
किन्तु,
तुम्हारे अधरों पर मुस्कान नहीं
नयनों में पानी था,
जिसमें,
मेरा चट्टान सरीखा धैर्य बह गया।

मौत

मौत क्या है ?
उसका रूप क्या है ?
रंग क्या है ?
आकार और प्रकार क्या है ?
कोई क्या जाने ?
नाम से परिचित
रूप से अपरिचित
कोई क्या पहिचाने ?
पंख फैला कल्पना के,
उड़ा उस देश को,
जहाँ, सब कुछ सच है
झूठ कुछ नहीं।
सम्भव है सब कुछ
असम्भव कुछ नहीं।
पता चला,
मौत!
एक दूल्हन है,
जो दूल्हे को,
पालकी चढ़ा ले आती है।
मौत!
मंजनू की लैला की तरह
फरहाद की शीरीं की तरह
फूल की खूशबू की तरह
मेनका, रम्भा की तरह
जब भी आती है,
सज संवर कर आती है।
जब भी आती है,
शरमाती है,

जरा रुक जाती है।
फिर,
कुछ देर मौन सम्भाषण
चुम्बन!
फिर आलिंगन
मौत, का आत्मा से गठबन्धन
मौत, आत्मा को ले जाती है
पंचतत्व से बना घर
सूना लगने लगता है
उसका दो क्षण का
साथ भी खलने लगता है।

दर्पण

मैं दर्पण हूँ !
हाँ दर्पण हूँ !
राजभवन में,
मणि मण्डित चौखट में वेष्ठित
आदमकद दर्पण हूँ।
बुधिया की मोनी में
बड़े जतन से गया संजोया
टूटा सा दर्पण हूँ।
राजभवन का कोई एहसान नहीं
नहीं शिकायत बुधिया से,
मैं, समदर्शी दर्पण हूँ।
हाँ दर्पण हूँ।
नहीं किसी का रूप निखारा
नहीं किसी का रूप बिगाड़ा
कबिरा की चादर-सा ज्यों का त्यों
मैंने सबका रूप उतारा,
मैं, निश्छल दर्पण हूँ।
हाँ दर्पण हूँ।
अन्धकार को नहीं भगाता,
उजियाले को नहीं बुलाता।
अर्पण को आई किरणों को,
वापस लौटा, लौटा देता हूँ।
मैं अकाम दर्पण हूँ।
हाँ दर्पण हूँ।

गोट

हम लूडो की गोट
समय बिसाती पर चलते हैं।
चलने को स्वाधीन नहीं।
निर्देशित हर गोट
परिस्थितियों से,
कभी-कभी
दो,
कभी, चार, छ चल लेती है।
सीढ़ी, अगर मिली कोई,
काफी ऊपर चढ़ जाती,
काफी आगे बढ़ जाती,
दुर्दिन के सर्प, सीढ़ी से ज्यादा होते हैं।
एक इशारे पर पासे के
किसी गोट को खा जाते हैं।
गोट बहुत नीचे आ जाती,
आगे बढ़ने का श्रम,
निष्फल हो जाता।
पुनः गोट
आगे बढ़ती है।
जो आखिरी खाने तक
पहले, पहुँची
वही सफल मानी जाती है।
आगे बढ़ने,
या, पीछे रहने में,
गोट का अपना हाथ नहीं है।

क्रम

फाग के रंगों रंगी सुबह,
दर्पण-सा चमकदार दिन,
नाइलान की रंगीन साड़ी में लिपटी शाम,
जले तवे-सी काली रात
शायद,
यही अटूट क्रम है।
मन कहता, नहीं,
यह भ्रम है।
यह तो
अपनी धुरी पर
निर्बाध,
अनवरत,
घूमती हुई पृथ्वी का
श्रम है।
श्रम ही
शाश्वत क्रम है।

तीन चित्र

हर मानव,
दीप बन जले।
अपने ही प्रकाश में चले।
अन्धकार को छले।
हर मानव, दीप बन जले।

मणि दीपों के प्रकाश में
तक्षक और वासुकि के वंशज पलते।
समय समझ डसते।
बड़े चालाक,
कहीं जाल में न फंसते
मणि दीपों के प्रकाश में
तक्षक और वासुकि के वंशज पलते।

ऊँची मीनारों पर,
झिलमिलाते दीपों का क्रम।
नीचे अन्धकार,
ऊपर प्रकाश का भ्रम
व्यर्थ हुआ दीपों का श्रम।
ऊँची मीनारों पर
झिलमिलाते दीपों का क्रम।

कुछ रेखायें

छोटे बच्चे के स्लेट पर,
कुछ रेखायें खड़ी,
कुछ पड़ी,
कुछ टेढ़ी मेढ़ी,
खेलवाड़!
अर्थहीन!
निष्प्रयोजन।
विशेषज्ञ की मेज पर
ब्लाटिंग पैड के कोने
लगे कागज के टुकड़े पर
कुछ रेखायें खड़ी
कुछ पड़ी
कुछ टेढ़ी मेढ़ी
उलझन!
चिन्तन!
समाधान!

बुद्धिजीवी

शब्दकोष में,
एक शब्द है बुद्धिजीवी,
हम ! जो,
कार्यालय, दूकान, मिल या अन्यत्र
रोजी रोटी के लिये
कलम घिसते हैं
या भाषण करते हैं
अपने को
बुद्धिजीवी समझते हैं।
हम! जो,
बीसवीं सदी में साँस लेते
इक्कीसवीं सदी की बातें करते
अठारहवीं सदी का जीवन जीते हैं
अपने को,
बुद्धिजीवी समझते हैं।

प्रश्नचिन्ह ?

सड़कों पर
घूरती आँखें,
उठती अंगुलियाँ
चारों ओर
जाने क्यों?
घबड़ा कर
खिड़कियों, दरवाजों,
को बन्द कर लेता हूँ।
मस्तिष्क में
प्रश्नचिन्हों का जाल,
जिसमें फँसी
तड़फड़ा रही
मन की हर चाल
आखिर ऐसा क्यों ?

आतिशबाज़ से

पटाखे छूटे
लगा–
पटाखों में
आवाज कम है।
धुयें में बारूदी गन्ध,
घुटन कम है।
आतिशबाज़ !
निवेदन है
पटाखों में,
बारूद कुछ बढ़ा दो,
दाम कुछ घटा दो,
बच्चे,
विस्फोटक शब्द सुनने,
बारूदी गंध, घुटन
में साँस लेने के
आदी हो जायेंगे।

सधे पाँव

चिकने चमकीले
शृंगों पर
फिसल-फिसल,
जाते हैं,
सधे-सधे पाँव।
चोटी की ऊँचाई
घाटी की गहराई,
आँखों की कोर छुये,
मन में उतरी,
मुग्ध मन!
विरम गया
भूल गया, अपना ही ठांव
चिकने चमकीले
शृंगों पर .... ।

पेट का भूत

अंधेरे धुधलके,
दरवाजे खड़के,
दरवाजा खोला,
एक भूत खड़ा था।
भूत बड़ा था।
उसने मुँह बाया
मैं उसके पेट में समाया,
अंधेरे ऊमस में समझ नहीं पाया
क्या करूँ?
जीऊँ या मरूँ।
प्रकृतिस्थ हुआ तो देखा,
अकेला नहीं हूँ।
अपने जैसा सभी का वेष है।
पूरा समाज,
पूरा देश है।
भ्रम हुआ
मैं कहाँ हूँ?
मैं जहाँ हूँ?
वह भूत का पेट?
या पेट का भूत।

बारह जनवरी की भोर

[स्व० लाल बहादुर शास्त्री के प्रति]

वातावरण उदास
अंधेरा फैला चारों ओर,
सिमटी सी गमगीन,
कुहांसे से मटमैली भोर।
बुझा-बुझा सा सूरज
जैसे कभी-कभी
दिन में दिखलाई दे जाता है चाँद .....

ज्योति-पत्र पर हस्ताक्षर कर
सूरज तिमिराच्छन्न हो गया
गन्ध गमकती रही किन्तु
मुरझा कर फूल विपन्न हो गया .....

नयनों से अश्रु न जिसके सूखे थे,
वही कपोती
बैठ मुंडेरे फिर रोई
आने वाले दिन की चिन्ता में खोई .....

एक श्रद्धाञ्जलि

डॉ० भाभा

जब कोई राजपुरुष मरता है
शव को,
राजकीय सम्मान मिलता है।
रेडियो करुण क्रन्दन करता है,
रामधुन का
अविरत कार्य-क्रम चलता है।
सजती है चितायें
चन्दन की,
स्पेशल ट्रेनों पर
गजरों-मालाओं से मालामाल
अस्थिकलश
सेक्यूलर स्टेट के
नान सेक्यूलर तीर्थों तक
जा पहुँचता है।
मातम के राग सही
बाजा बजता है।
राजपुरुष राजघाट जायें।
पर यदि
अणु के उपासक
पहाड़ से जा टकरायें ..... ।
क्षमा करें
मेरी – अणु की –
आँख बड़ी नम है,
विशेषांकों के लिये भी
यह मैटर कम है।

यू उनको भी गम है।
किन्तु यदि फोटो सहित
एकाध लेख कहीं
छिटपुट छप जाय
यही क्या कम है?
अद्भुत संयम है!

उन्मीलन

अन्धकार
शब्द और स्पर्श को सौंप दिया
आँखों का व्यापार,
टकराने
या धोखा खाने को
नियति बना
बिना चौंके
बढ़ रहे कदम
कभी राह से अपरिचित
लकुटी का दम।
सिर पर मँडराते
लुटेरों के पँखों से
रोम-रोम चौकन्ना रोमांच
बाज, चील, गिद्ध के
अन्तर को भूला।
मित्रता,
प्यार,
आदर्श
तेज दौड़ती कार से
अपने ही द्वारा उड़ाये गर्द में गुम हो गये हैं;
उनकी छायाएँ
विश्वासघात में सहायक हो गई हैं।
धन्य है आदमी,
जिसे मानवता ने
अपने हर परिधान से ढक दिया है
और स्वयं
परिधान के शिष्टाचार से मुक्त हो गई है।
— उसे तो अब आदमी नचाता है।

कौन देखे यह सब?
इसीलिये
शब्द और स्पर्श को सौंप दिया
आँखों का व्यापार।
नाँच यह रुकेगा,
जिसका परिधान है
उसको लौटेगा।
पर मेरी आँखों की
फूली पड़ी आँखों-की
शल्य क्रिया क्या होगी?
मुझे पाप का भान हो रहा है,
लो, मैं आँखें खोलता हूँ।
शब्द और स्पर्श से
अपना अधिकार वापस लेता हूँ।
मैंने कर्त्तव्यों का परिधान पहन लिया है।
माँ ! बहन !
जाओ, तुम भी अपने कपड़े पहन आओ।

महामानव 'उग्र' के प्रति

ओ ! महामानव
पाखण्ड एवं अन्धविश्वासों
की लौह-शृंखला में
मानवता अभी बन्दी है।
पट्टी बँधी आँखों
अन्धी है,
नंगी है।
टूटी कड़ियों के घाव
भरे कहाँ
करने को बहुत कुछ शेष
पूरी तैयारी कर जाने वाले
ओ ! महामानव
कैसे नियति को दूँ दोष।
काम पूरे होंगे
मानवता को
अपना रूप मिलेगा,
तुम्हारे लगाये बिरवों में
पुष्प नहीं गन्ध खिलेगा।
झकझोर कर,
जड़ से जिसे हिला दिया तुमने
भला कब तक टिकेगा।
ओ ! महामानव
विश्वास करो
उसे हम गिरा कर रहेंगे
और तब,
अपने को,
'उग्र' का उत्तराधिकारी कहेंगे।

मगरमच्छ

कन्धे जाल लिये
तट को जाते
ओ मछुआरो!
सुना है
तुम्हारा जाल बड़ा मजबूत है।
इसमें मछली और मगरमच्छ
दोनों फँस सकते हैं।
क्या बात है?
तुम, इसमें मछलियाँ ही फँसाते हो
मगरमच्छ नहीं
मगरमच्छ
जब फँसता है,
हँसता है।
तुम डर जाते हो।
उसे निकल जाने देकर
जाल
एहतियात से समेट लेते हो,
जैसे
कुछ हुआ ही नहीं।
जब तक मगरमच्छ हैं
अड़चनें, आती रहेंगी।
ओ मछुआरो !
अपने हृदय-हाथ मजबूत करो,
या, जाल छोड़कर
हट जाओ।
मगरमच्छ
मजबूत हाथ ही खींच सकते हैं
यूं जाल
हर हाथ उठा सकते हैं।

अभाव एवं अभाव पूरित मृत्यु

पिछले कई सालों से
जब जब
मत्स्यजीवी मुर्गाबि
सूखे तालाब की दरारों में
झाँक झाँक
भूख खाते,
प्यास पीते,
दम तोड़ते।
कौए
भोज की उमंग में
काँव काँव करते
चीलें
किलकारी मारती झपटतीं
दूरदर्शी गिद्ध
बड़ी दूर से ताड़ जाते
कि कब,
मुर्गाबि
सोने और साँस लेने की नियति से,
मुक्त हो गया।

फिर आया
ऐसा साल
जब बरसा पानी
मौसम बदला रेगिस्तानी
मन गया उकता
पिछले हर साल का हिसाब,
हुआ ब्याज सहित चुकता।
इतने पर भी

पानी नहीं रुकता।
कोयल और बुलबुल के घोसले बहे,
भींज गये पँखों ने
हजार दुख सहे।
शाखों पर अटकी नाव ने
बताई कहानी
नहीं देखा कहीं ऐसा पानी।
उतरा जो पानी,
उतराई दबी-सड़ी लाशें
फिर कौए काँव-काँव करने लगे
चीलें
किलकारी मारती झपटने लगीं
दूरदर्शी गिद्ध
बड़ी दूर से यह ताड़ने लगे
कि कब मुर्गाब
अपनी,
सोने और साँस लेने की
नियति से मुक्त हो गया।

एक सत्य

पानी बिच मीन पियासी,
मोहें सुनि सुनि आवत हाँसी।
कबीर ने जब कहा था,
जमाना राजतंत्र का था।
सत्य बोलने की सजा थी फाँसी
अपनी,—कबीर की जान बची रहे,
उक्त बानी को कहा उलटवाँसी।
सत्य ! जैसा तब था
वैसा अब है।
दाने को तरसते,
हल चलाने वाले पेट
ठंड से ठिठुरते
शाल बुनने वाले हाथ,
महलों का निर्माता
रात, रात वृक्षों की छाँव के साथ।
मानते हैं इसे
नियति का दोष,
ईश्वर के प्रति अनास्था।
सब, बकवास
धोखा,
अन्धविश्वास।
सब हो रहा है,
सिर्फ इसलिये
कि, इस अगाध सागर में
हमें मछली बनाने वाले
एक तुम हो! तुम!
एक हम खुद हैं।

बापू : आधुनिकता के पाश में

पूज्य बापू !
नमन है
स्वीकार कर लो,
भिनभिनाते बन्दना के शब्द,
लगते हैं, बड़े ही अजनबी से,
मतलबी, सूत्रों पिरोये गये,
बासी गुलाबों के,
बेरहम अम्बार में
वे तोड़ते दम;
प्रगति पथ पर
बहुत आगे ·····बहुत आगे
निकल आये हम।
नमन है,
स्वीकार कर लो।
चरण चिन्हों को तुम्हारे
मढ़ा हमने स्वर्णपत्रों से
और अब जब
तीर्थ से बन गये पद-चिन्ह हैं ये
मैं इन्हीं पर चलूँ;
शिव ! शिव !
ये बड़े ही पूज्य हैं मेरे लिये
इसलिये बापू !
नमन है
स्वीकार कर लो।
बात के व्यवहार के
तुमने दिये थे, जो हमें सिद्धान्त,
सुनहरी जिल्द वाली रोकड़ों में बन्द
सारा वाङ्मय बापू ! तुम्हारा

रख दिये हमने
रुपहली आलमारी में।
राष्ट्र की सम्पत्ति ये, तुम।
इसलिये मैं
व्यक्तिगत व्यवहार में
इस वाङ्मय का
नहीं करता कभी इस्तेमाल,
हाँ अमूमन,
भाषणों, लेखों, सभाओं में
इन्हीं को
आँख मूदे
अभय हो
बेधड़क इस्तेमाल करता हूँ।
बहुजन हिताय।
बहुजन सुखाय।
नमन है
स्वीकार कर लो।
नये युग के बदलते परिवेश में
मैं सात्विक सपने तुम्हारे क्या करूँगा
स्वप्न सच होते नहीं, यूँ भी
पश्चिमी रंगीनियों का स्वर
अनूठा और मादक
विवश हूँ;
लो
नमन है
स्वीकार कर लो।

हम - तुम

कल तक,
पहुँच वाली सड़क
आज,
उम्र से भी ज्यादा लम्बी हो गई है।
कुछ पा सकना
एक खूबसूरत फरेब,
जब कि,
अपनी ही पहचान खो गई है।

चाँद !
रोटी के जुगाड़ में
दिन भर का थका हारा,
बिस्तर पर गिरा,
तारे गिनने को,
सिर नहीं फिरा।
जब भी
गुनगुनाया
अपने को टूटे आईने
के सामने पाया।
हर टूटे टुकड़े में
अपना ही चेहरा, भाया।
दोस्त !
हम-तुम
इतने नजदीक तो कभी न थे,
जितने
पड़ोसियों की लड़ाई में।

मौसम जाड़े का

जब भी जाड़ा आता है,
मौसम तो मौसम,
दिल और दिमाग
बदल जाता है।
परकीया सी धूप भाती है,
स्वकीया सी रात
भरे पूरे गाती है अभाव में सताती है।
जब भी जाड़ा आता है,
समय परिस्थितियों की कील पर,
चमगादड़ सा उल्टा लटका जाता है।

सुबह
जब तापमान कम होता है
हम पाजामा और बनियाइन पहने
घर में ठिठुरते
चाय की चुस्की लेते
बीड़ी पीते,
या तम्बाकू थूकते हैं।

नौ बजते बजते
सूरज ऊपर चढ़ जाता है,
तापमान बढ़ जाता है।
हम गर्म पैन्ट कोट पहनते
बड़े होने का मुखौटा लगाते
बौनी दीवारें फाँदते
सड़क पर निकल आते हैं।

सूरज पश्चिमी रंगीन दुशाले
में मुँह ढकने जाता,
सड़कों के बाजार से घर पहुँचते
पारा गिर जाता।
कोट-पैन्ट हैंगर टँग जाता,
बिना सिर-पैर का, झूठा अहं
फाँसी चढ़ जाता
कुछ देर झूल कर,
थम जाता।

फिर,
वही सुबह वाले,
हम होते हैं।
हमारे बच्चे,
हमारे गम होते हैं।
हम !
पाजामा बनियाइन पहने
सिसियाते,
बच्चों को डाँटते
चाय पीते
बीड़ी फूकते
या तम्बाकू थूकते हैं।

बैसाखी

मित्र !
अजीब हो तुम,
विश्वास करो,
उस व्यक्ति को
थप्पड़ मार देता,
जिसने कहा था,
तुम !
बगैर बैसाखी नहीं चल सकते
तुम्हारे पाँव,
धरती पर नहीं पड़ सकते।

बैसाखी,
बाँस की हो,
चन्दन की,
या चाँदी की—
बैसाखी तो बैसाखी
अपने पैरों खड़ा आदमी
उस पर तरस खा सकता है
मदद कर सकता है।
उसे
अपने बराबर,
अपने से बड़ा
नहीं समझ सकता।

दावे के साथ कह रहा हूँ
तुम्हें कुछ हुआ नहीं।
आदी हो गये हैं पाँव
बैसाखी के।

बैसाखी !
छोड़ चलो,
पैरों को साधो,
संभलने का यत्न करो।
सम्भव है गिर पड़ो,
लोग हँसे।
याद रखना,
उठकर चलना है
बैसाखी उठाना नहीं।

कुछ करें

दोस्त !
इतिहास बन्द करें,
कुछ काम करें।
सुनहले फ्रेम मढ़ा
बाबा का चित्र
अतीत की याद दिला सकता है,
चाय के लिये चीनी,
बीबी के लिये चेस्टर,
बच्चे के लिये चाकलेट नहीं।
चलो कुछ करें।
जिससे
चीनी, चेस्टर और चाकलेट
का इन्तजाम हो सके।
आदमी, आदमी बन कर जिये,
आदमी की तरह साँस ले सकें।

दोस्त !
मुझे भौतिकवादी कह कर,
हँसो मत।
आध्यात्म के विषय में
तुम भी,
कुछ कम ही जानते हो।
अन्धविश्वासों में
फँसो मत।
नवधा भक्ति,
भौतिक कर्मवाद ही है
दोस्त !
काहे को कान पर हाथ धरे

खड़ा है।
वह देख !
तेरा, कृष्ण
मिट्टी में पड़ा है।
रिक्शे पर बैठे कंस को
कृष्ण खींच रहा है।
उठो !
कुछ करें।
कृष्ण के लिये
पीताम्बर, माखन और गेंद की,
व्यवस्था करनी है।
डालडा खाता
रिक्शा खींचता कृष्ण !
चाय की प्याली में,
अपने को डुबा सकता है,
गोबर्द्धन नहीं उठा सकता
कृष्ण, कृष्ण बने
आवश्यक है, हम
कुछ करें।

कैसा है शहर ?

कैसा है ?
यह शहर।
ऐसे शहर की चर्चा
न कहीं सुनी,
न कहीं पढ़ी।
यहाँ हर आदमी
कन्धे पर,
सलीब लिये घूमता है।
पर यह यरूसलम तो नहीं ?
हर व्यक्ति ईसा तो नहीं?
कन्धे पर झूलते सलीब
एक जैसे नहीं
कुछ छोटे, कुछ बड़े।
कुछ सोने के चाँदी के।
हीरे-मोती के।
सलीबों पर,
कोई इन्हें लटकाता नहीं,
न तो हथेलियों-पैरों में
कील ही ठोंकता है।
विचित्र है रिवाज, यहाँ का,
लोग,
चौराहों पर,
सलीब गाड़ देते हैं
और स्वयं लटक जाते हैं।
या
उसके सामने
खड़े सर झुकाये
यामीन !
यामीन ! कहते है।

फिर, कन्धे पर
सलीब लिये
आगे बढ़ जाते हैं।
लेकिन
ये बाजीगर भी तो नहीं।
समझ में नहीं आता
कैसा है यह शहर ?
कैसे हैं ये लोग ?

क्या कर रहे हो ?

दोस्तो !
यह क्या कर रहे हो ?
परिचितों के बीच,
अपरिचय के दीवार टंग रहे हो।
मंजिल तक पहुँचने का,
मिथ्या अहम्
दिशाहीन अंधेरी गुफा में,
भटक रहे हो

दोस्तो ...... ?

अपने को,
बेगुनाह साबित करने के चक्कर में,
बड़े से बड़ा गुनाह कर रहे हो।
गीता के श्लोक,
कुरान की आयतें
बदल रहे हो।

दोस्तो ...... ?

मगरमच्छ और हिंसक जन्तु,
फँसाने वाले जाल में
छोटी-बड़ी मछलियाँ और बटेर
फँसा रहे हो।
कुछ बड़ी मछली को मगरमच्छ,
गौरइये को बाज का बच्चा बता रहे हो।

दोस्तो ...... ?

घर में लोग,
पड़ी, सड़ी लाश जी रहे हैं,
और तुम !
घर से घाट

और,
घाट से घर तक
एक अजन्मी लाश ढो रहे हो
दोस्तो ...... ?

प्रयोग के चक्कर में,
कभी यौगिक,
कभी मिश्रण,
के घोल से गुजर रहे हो।
गर्मी बढ़ने पर
भाप की मानिन्द
टेस्टट्यूब से बाहर निकल रहे हो।
घूम फिर कर,
दिशाहीन अंधेरी गुफा में
भटक रहे हो।
दोस्तो ...... ?

आदमी मरा नहीं

लम्बे अरसे तक
शिलाखण्ड के नीचे दबे रहने पर
आदमी!
जब शहादत के लिये
बाहर निकाला गया,
डरा नहीं
आदमी मरा नहीं
चारों ओर घुटन
निगाहों की खंजरी चुभन
पोर-पोर खून रिसता,
घाव!
भरा नहीं।
आदमी मरा नहीं

सावधान

कुत्ते से प्यार करो,
आदमी से डरो।
पट्ट पर,
जहाँ लिखा है,
कुत्ते से सावधान।
वहीं लिख दो,
आदमी से सावधान !
आदमी !
कुत्ते,
या किसी हिंसक जन्तु से,
ज्यादा, चालाक,
और
खतरनाक है।

समझदारी

बात समझदारी की
मत करो यार !
सारी की सारी समझदारी
रख दी गई रेहन
पैसों के नाम

जूतों के चमकते
कथित समझदार
लेते-देते हैं
सलाम
सुबह शाम।

जूतों पर चमक नहीं
तल्ले के कील
जब
छेद रहे पाँव
ठोकर देती है
घर की चौखट
नासमझ कहते हैं
ठौर-ठाँव।

बात समझदारी की
मत करो यार !

गुरुता

आदमी,
खाली हाथ आता है,
खाली हाथ जाता है।

क्या है हमारे हाथ में ?
तन पर है राजा का पहरा,
मन पर मठ का,
धन पर शठ का।

श्वासों ने माँगा तो
आश्वासन मिले–
सपनों में जीत लिये किले।

माँगो मत किसी से कुछ
खाली हाथ आदमी
हल्का लगता है।
हाथ में तुम्हारे यदि कुछ नहीं तो
उठा लो यह
रास्ते पड़ा पत्थर।
लोग ठोकर खाने से बचेंगे;
पुण्य-पाप की बात नहीं,
इससे तुम्हारा वज़न बढ़ जायगा।
सच मानो,
ज़माना डर जायगा।

चाह

चाह होती है।
डाह होती है।
देखता हूँ,
जब किसी ओठ पर
चिपकी सी थिरकती हँसी।
सोचता हूँ।
वह
मैं
क्यों?
न हुआ।

दिखायी नहीं देता

दिखायी नहीं देता
साफ, साफ
चेहरा
अपना-आपका।
सोचता हूँ,
गड़बड़ी कहाँ है?
आइने में,
चश्मे में,
आँख में,
या मन में।
दिखाई नहीं देता
साफ साफ
चेहरा।
अपना-आपका।

भेड़ और चरवाहा

भेड़, भेड़ होती है
चरवाहा, चरवाहा।
अपने देश में
कथित जाति विशेष के लोग
मुद्दत से भेड़ चरा रहे हैं।
चरवाहे की पगड़ी
लाल, पीली, हरी, नीली,
या सतरंगी हो,
कोई फर्क नहीं पड़ता।
भेड़, भेड़ होती है
चरवाहा, चरवाहा।
भेड़, चरवाहे की सम्पत्ति होती है।
गोश्त खाने के,
ऊन वस्त्र के
खाल व्यापार के, काम आता है।
जनतंत्र, प्रजातंत्र और गणतंत्र,
के नाम पर
हर पाँचवें साल या जब तब
भेड़ों को चुनाव परेड में,
उतारा जाता है।
बात अलग है कि,
उन दिनों
चरवाहे के डण्डे में झण्डा भी होता है।
आश्वासनों और वादों की
हरी घास भी !
कुछ चरवाहे भेड़ों को
अन्धविश्वासों की अफीम भी पिलाते हैं।

भेड़ तो भेड़
दुम हिलाती, जय जयकार करती
झुण्ड की झुण्ड हो लेती हैं—
किसी चरवाहे के साथ।
भेड़ कुछ समझदार हुई हैं।
चरवाहों की चाल समझ में
आने लगी है।
जनतंत्र, प्रजातंत्र, गणतंत्र
की सार्थकता तो तब होगी,
जब,
भेड़ें चरवाहा होंगी,
और चरवाहे भेड़।

सर्चलाइट

सदियों से
यही हो रहा है।
सर्चलाइट
जिसके हाथ रही
बिना समझे
लोग !
उसी के पीछे चल पड़े।
एक, दो, दस नहीं
सैकड़ों, करोड़ों लोग।
बिना समझे।
सर्चलाइट वाला आदमी
उन्हें,
घाटी के दल-दल
या जमा देने वाली बर्फीली
चोटी पर ले चल रहा है।
लोग !
दल-दल में फँस जाते हैं
बर्फ में जम जाते हैं।
जब तक,
इसका आभास होता है
हम इतने आगे,
निकल गये होते हैं
कि लौटना
असम्भव नहीं,
तो मुश्किल
अवश्य होता है।

बाड़

वर्जनाओं
के बाड़
के पार
गुलाब, गुलदावदी गेंदा
मखमली हरी घास
पीत परिधानालंकृत सरसों
सब कुछ है।
अगर कुछ नहीं है ?
तो हम !
उस पार
कथित अभिजात्य, क्रीड़ारत
श्वेत पँखी कुक्कुट युगल।
धूप सेंकते, चौकड़ी भरते
खरगोश !
नोच खाने को खड़े
कबरे कुत्ते।
कमजोर आदमी के लिये
इतने मजबूत किले।
क्या, कुछ नहीं किया जा सकता ?
अकेले,
किला, न टूटे न सही
बाड़ का खम्भा,
हिला कर,
गिराया जा सकता है?
यही दूसरों को
बाड़ तोड़ने को
उकसा सकता है।
आज नहीं तो कल। हम न सही और सही
बाड़ किला टूट कर रहेगा।

हर सड़क,
संसद तक जाती है।
झब्बेदार प्रहरियों के बीच,
सड़क संसद हो जाती है।
फिर,
सड़क, सड़क होती है।
और,
संसद, संसद।
सड़क, संसद को,
समाचार पत्रों,
रेडियो,
और दूरदर्शन
के माध्यम से जानती है।
संसद
सड़क को
हवाई सर्वेक्षण
या
कमीशन के रिपोर्ट
से पहचानती है।
संसद को जुकाम हुआ
समाचार पत्रों के पन्ने भर जाते हैं।
सड़क पर कत्ले-आम हुआ
कुछ चिल्लपों अफवाह
फिर सब कुछ सामान्य
संसद, फिर सड़क
होती है
सड़क से संसद
तक जाने के लिये

खाद

मैं
एक लहलहाती
खड़ी फसल
न हो सका
न सही
कोई बात नहीं।
हमें
खाद होने से
कौन
रोकेगा ?
खाद !
आने वाली फसल के लिये,
नसल के लिये,
आवश्यक और
उपयोगी है।

क्या हुआ अब तक ?

भाषण, रैली
नारे, बन्द,
हड़ताल,
एकता के नाम पर
लम्बी-लम्बी
सद्‍भावना यात्रायें,
क्या हुआ?
इनसे अब तक?
वही, ढाक के तीन पात
यथास्थिति बनाये रखने,
और
विरोध का स्वांग।
खौलते पतीले से
उठती हुई भाप से,
कब बने बादल
बादल बने
इसके लिये आवश्यक है
सूरज के साथ
समुद्र भी जले, तपे।

विसंगतियों के साथ

दुख की अनगूँज शहनाइयों के बीच
सुख की,
शवयात्रा से गुजरता हुआ,
मैं !
कभी खुद टूटा हूँ,
कभी तोड़ा गया हूँ।
मेहरबानी
दोस्तो की !
हर बार
विसंगतियों के साथ
जोड़ा गया हूँ
इस टूटने और
जुड़ने के क्रम में
क्या से,
क्या हो गया हूँ
कभी खुद टूटा हूँ
कभी तोड़ा गया हूँ।

अन्य विधा

हृदयहीन का प्यार

बनजारों सा गुफा गुफा
घाटी घाटी,
मैं घूम रहा।
सूर्य-चन्द्र की प्रखर शबनमी,
किरणों को था चूम रहा।
तुम !
एक ज्योति की मस्त किरण सी,
बन्दी मारुत जिसकी अलकों में,
बिजली सी मुस्काती आई।
चिरपरिचित सी लगी,
सुधियों ने दी सौ बार बधाई।
युग से सोई हुई कामनाओं ने
ली अंगड़ाई।
जरा तेज हो लगी बहकने
साँसों की पुरवाई।
विजय माल सी बाहुलतायें
कंधों पर आ झूलीं।
आशा की बान्ध्य लतायें
इठला इठला कर फूलीं।
पारिजात के कुसुम तोड़कर
अलकों का शृंगार किया।
निशा सरीखे केश राशि में
सुमन तारिका बिछा दिया।
बेला, जूही की कलियों के
अनुपम ललित हार पहिनाये।
चम्पक के कंगन हाथों में,
अपना सा रंग देख लजाये।
दिन दुपहरिये का झूमर

कानों में झूमा
भूले से अधरों ने जब,
अधरों को चूमा।
बाँहो में बाँहे डाल
झुका पलकें थी बोली
देखो !
तारों के कन्धे चढ़,
आ रही,
निशा की डोली।
पाँव हमारे साथ तुम्हारे
बढ़े, अजानी ओर,
धीरे, धीरे,
मन्द पड़ रहा था,
चिड़ियों का शोर।
आ गई तुम्हारी स्वर्ण गुफा
चाँदी के जिसके सिंहद्वार
मणी दीपों से
कोना, कोना
होता था जिसका उजियार
तेरी पलकों की छाँव
पलक
दो क्षण को सुस्ताये
अलकों से उलझ अंगुलियों ने
केश जाल बिखराये।
अर्पण को तत्पर थी
तेरी
शृंगार कलायें।
वंशी से भी मीठे स्वर में
तूने, लोरी गाई
पता नहीं कब आँख लगी।
जब

आँख खुली
सुनसान गुफा थी
मैं था।
पागल सा उठा
न जाने, कितनी आवाज लगाई
मेरे ही आवाजों ने मुझे चिढ़ाया,
पीले पीले गात,
पथराई आँखों वाले
चेहरों ने घेरा,
पूछा?
कल रात यहाँ घाटी में
तेरा ही था डेरा।

मृगतृष्णा

दौड़ना,
दौड़ना,
दौड़ना।
मृगतृष्णा, प्यास लिये,
थकी थकी साँस लिये।

दौड़ना,
दौड़ना
दौड़ना।
कहीं नहीं है पानी,
बे पानी बे मानी।

दौड़ना,
दौड़ना
दौड़ना।
आशा की किरण लिये,
अनचाहा वरण किये।

दौड़ना,
दौड़ना,
दौड़ना।

मुक्तक

अलस्सबाह उठना और बासन खंगारना
आँगन से अपनी परछाई बुहारना।
कमरे में खाली डिब्बों का लुढ़कना
बच्चों को डाटना कुत्ते को मारना।

यह मेरा अस्तित्व, कि जिसने तुमको अस्तित्व दे दिया,
जग स्वामी स्रष्टा होने का, तुमको अमर प्रभुत्व दे दिया।
छोड़ मनुज को कोई जग प्राणी कब वन्दन अर्चन करता,
तेरा ही अस्तित्व सजाने में अपना अस्तित्व खो दिया।

मुक्तक

बे मौसम बूंदें बरसी हैं,
शायद सावन सूखा बीते।
घट पनघट से पहले छलका,
शायद पनघट पर ही रीते।

प्राण प्रतिष्ठा के पहले ही,
मूर्ति पूजारी को ठगती है।
लेकिन मैं ऐसा पाहन हूँ,
जिस पर दूब नहीं उगती है।

झिलमिल झिलमिल चूनर पहिने,
किरणें वापस आई होंगी।
जान रहा उनकी अल्हड़ता,
दर्पण से टकराई होंगी।

कौन थी? तुम!

तारिकाओं की पहन चूनर निशा जब
चाँदनी में भींग चन्दा को बुलाती।
स्वप्न के हिण्डोल चढ़ गा लोरियाँ,
कौन थी तुम ? जो सदा मुझको सुलाती।

अंगुलियों से तार वीणा के थिरकते,
अर्चना के थाल जब ऊषा सजाती।
कल्पना की मूर्ति सी साकार सजकर
कौन थी तुम ? जो सदा मुझको जगाती।

कौन आकर्षण रहा मुझमें न जाने?
हर अजानी ओर से मुझको बुलाती।
और मेरे ही सगुन हित देहरी पर,
कौन थी तुम ? जो सदा दीपक जलाती।

अपना घट भरने चलना है

अपना घट भरने चलना है,
सूना नदिया का अंचल है।
सरिता के कल-कल छल-छल से,
मन संध्या का भी चंचल है।
राहें एकाकी हैं जिन पर,
कोई साथी आज नहीं है।
मन सागर में प्रेम तरंगें,
उमड़ घुमड़ कर नाच रही हैं।
लौट सकूँगा मैं इस पर
मुझे जरा विश्वास नहीं है।
शायद मेरा प्रियतम, मेरी,
बाट देखता वहीं कहीं है।
अन्तरिक्ष से आती ये,
वंशी ध्वनि तन-मन साल रही है।
अरे प्रेम यह शाश्वत है?
भ्रम या कोरा छलना है।

अपना घट ....।

वन्दना

राजहंस पर चढ़ कल्याणी,
मन मन्दिर में आओ।
प्रमुदित मन हो वीणावादिनि,
वीणा आज बजाओ।
अन्धकार फैला है चहुंदिशि,
ज्ञान किरण बिखराओ।
सीधी राह मिल सके जिससे,
ऐसी ज्योति जलाओ।
नीर क्षीर का ज्ञान हो सके,
विमल बुद्धि उपजाओ।
मानव बन्धन मुक्त हो सके,
ऐसा ही कुछ गाओ।
सत्यं शिवम् सुन्दरम् की,
मधुमय सरिता सरसाओ।
वीणावादिनि, पुस्तकधारिणि,
वरद हस्त उठाओ।

अनुक्रमणिका

परिचय

नाम	:	मुरलीधर सिंह 'अंश'
जन्मतिथि	:	11 मार्च, 1938
जन्मस्थान	:	सद्दूपुर मोहाना, चुनार, मिर्ज़ा
पता	:	रमई पट्टी (पानी टंकी के पूव मिर्ज़ापुर
शैक्षिक योग्यता	:	एम० ए० (हिन्दी), साहित्य आयुर्वेद रत्न